वार्षिक रु. २००, मूल्य रु. २०

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६२ अंक ६ जून २०२४

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६२

अंक ६

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी अव्ययात्मानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

ज्येष्ठ, सम्वत् २०८१

जून, २०२४

अनुक्रमणिका

* सभी शरीरों में मानव शरीर ही सर्वश्रेष्ठ है : विवेकानन्द २४६
* मन्दिर का आध्यात्मिक महत्त्व (डॉ. अन्वय मुखोपाध्याय) २४९
* विवेकानन्द-स्मृति (मोहनलाल साह) २५२
* जीवन में सहजता कैसे आयेगी? (स्वामी सत्यरूपानन्द) २५४
* लोक संस्कृति में श्रीराम (श्रीधर प्रसाद द्विवेदी) २५५
* (बच्चों का आंगन) स्वस्थ तन में मन का योगदान (श्रीमती मिताली सिंह) २५७
* नि:स्वार्थता : साध्य और साधन-विमर्श (ब्रह्मचारी नरोत्तमचैतन्य) २६२
* (युवा प्रांगण) विक्षुब्ध मन पर अच्छी आदतों और सद्गुणों का प्रभाव (स्वामी गुणदानन्द) २६५
* सबकी श्रीमाँ सारदा (स्वामी चेतनानन्द) २६८
* आधुनिक जीवन में योग की भूमिका (डॉ. श्याम सिंह) २७३
* श्रीराम और श्रीरामकृष्ण (स्वामी निखिलात्मानन्द) २७५
* (कविता) वज्र की माधुर (श्रीधर) २५४
* (काव्य-सरिता) वरदान दे माँ सारदे (डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी')
* तुम ही प्रभु सर्वस्व हमारे (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) २६७

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) २४५
पुरखों की थाती २४५
सम्पादकीय २४७
रामगीता २५८
श्रीरामकृष्ण-गीता २६१
प्रश्नोपनिषद् २६४
गीतातत्त्व-चिन्तन २७९
साधुओं के पावन प्रसंग २८२
समाचार और सूचनाएँ २८५

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५ (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक) रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति २०/-	२००/-	१०००/-	२०००/-
विदेशों में (हवाई डाक से)	६० यू.एस. डॉलर	३०० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिए	२५०/-	१२५०/-	
भारत में रजिस्टर्ड पोस्ट से माँगने का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ३०/- देय होगा।			

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर दर्शाया गया मन्दिर रामकृष्ण मिशन, विद्यालय, कोयम्बटूर, तमिलनाडु का है, जिसका उद्घाटन १६ जनवरी, २०२४ को स्वामी सारदानन्द जी महाराज की पुण्य जन्मतिथि पर श्रीमत् स्वामी गौतमानन्द जी महाराज, उपाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं मिशन के करकमलों द्वारा किया गया।

लेखकों से निवेदन

सम्माननीय लेखको ! गौरवमयी भारतीय संस्कृति के संरक्षण और मानवता के सर्वांगीण विकास में राष्ट्र के सुचिन्तकों, मनीषियों और सुलेखकों का सदा अवर्णनीय योगदान रहा है। विश्वबन्धुत्व की संस्कृति की द्योतक भारतीय सभ्यता ऋषि-मुनियों के जीवन और लेखकों की महान लेखनी से संजीवित रही है। आपसे नम्र निवेदन है कि 'विवेक ज्योति' में अपने अमूल्य लेखों को भेजकर मानव-समाज को सर्वप्रकार से समुन्नत बनाने में सहयोग करें। विवेक ज्योति हेतु रचना भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें –

१. धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा मानव के नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित रचनाओं को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है।, **२.** रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिकतम चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर स्पष्ट सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुयी हो। आप अपनी रचना ई-मेल – vivekjyotirkmraipur@gmail.com से भी भेज सकते हैं।, **३.** लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें।, **४.** आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें।, **५.** पत्रिका हेतु कवितायें छोटी, सारगर्भित और भावपूर्ण लिखें।, **६.** 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों का पूरा उत्तरदायित्व लेखक का होगा और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा। न्यायालय-क्षेत्र रायपुर (छ.ग.) होगा।, **७.** 'विवेक-ज्योति' में मौलिक और अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है, इसलिये अनुवाद न भेजें। यदि कोई विशिष्ट रचना इसके पहले किसी दूसरी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हो, तो उसका उल्लेख अवश्य करें।

जून माह के जयन्ती और त्यौहार

३,१८ एकादशी

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री अनुराग प्रसाद, कौशाम्बी, गाजियाबाद (उ.प्र.)	९४०१/-

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन नि:शुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
७२२. श्री जगदीश कुमार धुर्वे, नर्मदापुरम (म.प्र.)	लाईब्रेरी, भगवान बिरसामुण्डा शा. महाविद्यालय, सुखतवा (म.प्र.)

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के सोलहवें संघाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज ब्रह्मलीन हुये

अत्यन्त दुख से हम सूचित कर रहे हैं कि रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के १६वें संघाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज २६ मार्च, २०२४ को सन्ध्या ८.१४ को ९४ वर्ष की आयु में ब्रह्मलीन हो गये। उनका अन्तिम संस्कार बेलूड़ मठ में २७ मार्च को रात्रि ९ बजे किया गया।

श्रीमत् स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज का जन्म तमिलनाडु के तंजावुर जिले के अंडामी गाँव में मई, १९२९ में हुआ था। बचपन में ही उनकी माता का देहावसान होने के कारण उनका लालन-पालन उनकी मामी ने किया। सन् १९४२ में मद्रास में उन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। उनके पिताजी महाराष्ट्र के नासिक में कार्यरत थे। उन्होंने नासिक से वाणिज्य शाखा में डिप्लोमा प्राप्त किया। सन् १९४९ में वे मुम्बई आये तथा नौकरी करते हुए अध्ययन करते रहे। छात्रावस्था से ही वे अत्यन्त मेधावी तथा गहन चिन्तक थे। अनेक अंग्रेजी साहित्यों का उन्होंने गहन अध्ययन किया था। अमेरिकी लेखक नेपोलियन हिल के स्वयं-सहायता-साहित्य का उन्होंने विशेष अध्ययन किया था।

वे महात्मा गाँधी के विचारों से प्रभावित थे। गाँधीजी के परामर्शानुसार वे रामनाम का जप किया करते और यही उनके भावी जीवन के लिए एक नया मोड़ सिद्ध हुआ। मुम्बई में रहते समय वे एकान्त भ्रमण के लिए वरली के समुद्रतट पर जाया करते तथा वहाँ चट्टानों पर बैठकर सूर्यास्त का अवलोकन करते। एक दिन वहाँ बैठे-बैठे उनके मन में विचार आया, यह चट्टान इतना विशाल है ! यह समुद्र कितना अथाह है ! यह आकाश असीम है ! इनकी तुलना में जब मैं केवल एक बिन्दु मात्र हूँ, तब इसके लिए इतना क्यों सोचना? तत्क्षण उनको अन्दर से उत्तर मिला, यद्यपि हम इस जगत के सामने एक बिन्दु मात्र हैं, फिर भी हमारे भीतर जो महान अस्तित्व है, वह इन सभी से बहुत विशाल है। उपरोक्त विचार इतने प्रबल थे, उन्हें लगा कि इन्हें कोई उनके कानों में यह कह रहा हो। गीता या उपनिषद पढ़ने के बाद यह विचार उनके मन में दृढ़ हो गया।

मुम्बई में छात्रावास में रहते समय अपने सहपाठी से बातचीत के दौरान उन्हें मुम्बई स्थित रामकृष्ण मठ के बारे में पता चला। वे एक दिन आश्रम गये। इस प्रकार वे मुम्बई आश्रम आने-जाने लगे। वे श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य का अध्ययन करने लगे। वे मुख्यत: श्रीरामकृष्णवचनामृत, ज्ञानयोग और शक्तिदायी विचार जैसी पुस्तकें पढ़ते। वे २० वर्ष की आयु में रामकृष्ण मठ, मुम्बई में स्वामी अपर्णानन्द जी महाराज के सम्पर्क में आये। १९५२ में २२ वर्ष की आयु में वे मुम्बई आश्रम में श्रीरामकृष्ण के पवित्र जन्मदिन पर एक ब्रह्मचारी के रूप में प्रवेश लिए। उसी वर्ष रामकृष्ण संघ के सातवें परमाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी शंकरानन्द जी महाराज से मुम्बई में ही उन्हें मंत्रदीक्षा प्राप्त हुई। उन्हें स्वामी शंकरानन्द महाराज से ही १९५६ में ब्रह्मचर्य दीक्षा तथा १९६० में संन्यास दीक्षा प्राप्त हुई तथा उनका नाम हुआ 'स्वामी स्मरणानन्द'।

मुम्बई में ब्रह्मचारी के रूप में उन्होंने आश्रम के विभिन्न विभागों में कार्य किया। औरंगाबाद जिले में उन्होंने अकाल-राहत-कार्य कुशलता से किया। उन्होंने सन् १९५४ में मुम्बई आश्रम के तत्कालीन प्रमुख स्वामी सम्बुद्धानन्द जी महाराज के साथ बेलूड़ मठ की यात्रा की तथा श्रीमाँ श्रीसारदा देवी की जन्मशताब्दी में जयरामवाटी में श्रीसारदा देवी के मन्दिर के प्राण-प्रतिष्ठा-समारोह में भी भाग लिया।

शेष भाग पृष्ठ २६७ पर

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!

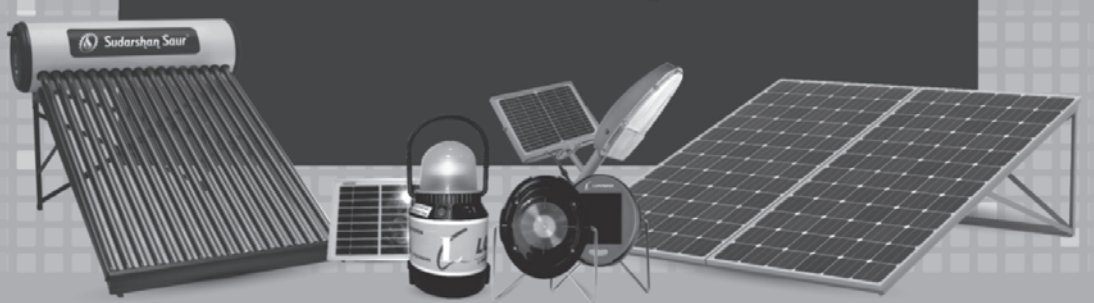

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखां संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६२ जून २०२४ अंक ६

श्रीरामकृष्ण-स्तोत्रम्

आजन्म ब्रह्मचारी शिशुरिव सततं स्निग्धहास्योज्ज्वलश्री-
मूर्तः कारुण्यराशिः कुसुममिव शुचिः सद्गुरुर्वीतमानः।
आत्मारामो मनोज्ञः परम इति पुनर्हंससंज्ञः स शिष्यैः
साक्षाच्छ्रीरामकृष्णः प्रदिशतु भगवान् रामकृष्णः शुभं नः।।

– जो आजन्म ब्रह्मचारी थे, शिशुवत् सर्वदा स्निग्ध हास्य से उज्ज्वल श्री से मण्डित थे, करुणा के मूर्त विग्रह थे, पुष्प सदृश पवित्र थे, सद्गुरु थे, निरभिमानी थे, आत्माराम थे, चित्त का मनोरंजन करनेवाले थे, सर्वश्रेष्ठ और साधकों में अग्रणी होने के कारण जो परमहंस की संज्ञा से संज्ञित थे एवं जो साक्षात् रामकृष्ण रूप में अवतरित हुये थे, ऐसे श्रीरामकृष्ण परमहंस देव अन्तरंग शिष्यों के साथ उपस्थित होकर हम लोगों का मंगल करें, यही प्रार्थना है।

पुरखों की थाती

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये वको यथा।।८३३।।

– जो माता-पिता अपने बच्चों को शिक्षा नहीं देते हैं, वे उनके शत्रुओं के समान हैं, क्योंकि विद्वानों की सभा में, हंसों के बीच कौए के समान वह विद्याहीन बालक शोभा नहीं पाता।

मूर्खा यत्र न पूज्यन्ते धान्यं यत्र सुसंचितम्।
दाम्पत्ये कलहो नास्ति तत्र श्री स्वयमागता।।८३४।।

– जिस घर में मूर्खों को महत्त्व नहीं दिया जाता, अन्न-भण्डार भरा रहता है और पति-पत्नी के बीच कलह नहीं होता, वहाँ लक्ष्मी स्वयं ही आ विराजती हैं।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।८३५।।
(मनु.)

– जिस कुल में नारियों का सम्मान होता है, उसमें देवी-देवता-गण विचरण करते हैं और जिस कुल में उनका सम्मान नहीं होता, उसमें होनेवाले सारे कार्य निष्फल हो जाते हैं।

सभी शरीरों में मानव शरीर ही श्रेष्ठतम है : विवेकानन्द

सब प्रकार के शरीरों में मानव-शरीर ही श्रेष्ठतम है, मनुष्य ही श्रेष्ठतम जीव है। मनुष्य सब प्रकार के प्राणियों से, यहाँ तक कि देवादि से भी श्रेष्ठ है। मनुष्य से श्रेष्ठतर कोई और नहीं। देवताओं को भी ज्ञान लाभ के लिए मनुष्य देह धारण करनी पड़ती है। एकमात्र मनुष्य ही ज्ञान लाभ का अधिकारी है, यहाँ तक कि देवता भी नहीं। यहूदी और मुसलमानों के मतानुसार, ईश्वर ने देवदूत और अन्य समुदाय सृष्टियों के बाद मनुष्य की सृष्टि की। और मनुष्य के सृजन के बाद ईश्वर ने देवदूतों से मनुष्य को प्रणाम और अभिनन्दन कर आने के लिए कहा। इबलीस को छोड़कर बाकी सबने ऐसा किया। अतएव ईश्वर ने इबलीस को अभिशाप दे दिया। इससे वह शैतान बन गया। इस रूपक के पीछे यह महान सत्य निहित है कि संसार में मनुष्य-जन्म ही अन्य बाकी जन्म की अपेक्षा श्रेष्ठ है। (१/५३-५४)

आश्चर्य की बात है कि सभी धर्म एक स्वर से घोषणा करते हैं कि मनुष्य पहले निष्पाप और पवित्र था, पर आज उसकी अवनति हो गयी है, इस भाव को फिर से रूपक की भाषा में या दर्शन की स्पष्ट भाषा में अथवा कविता की सुन्दर भाषा में क्यों न प्रकाशित करें, पर वे सब के सब अवश्य इस एक तत्त्व की घोषणा करते हैं। (२/५)

अतएव मनुष्य का प्रकृत स्वरूप एक ही है, वह अनन्त और सर्वव्यापी है और यह प्रातिभासिक जीव मनुष्य के इस वास्तविक स्वरूप का एक सीमाबद्ध भाव मात्र है। इसी अर्थ में पूर्वोक्त पौराणिक तत्त्व भी सत्य हो सकते हैं कि प्रातिभासिक जीव, चाहे वह कितना ही महान् क्यों न हो, मनुष्य के इस अतीन्द्रिय, प्रकृत स्वरूप का धुँधला प्रतिबिम्ब मात्र है। अतएव मनुष्य का प्रकृतस्वरूप आत्मा कार्य-कारण से अतीत होने के कारण देश-काल से अतीत होने के कारण, अवश्य मुक्त स्वभाव है। वह कभी बद्ध नहीं थी, न ही बद्ध हो सकती थी। यह प्रातिभासिक जीव, यह प्रतिबिम्ब, देश-काल-निमित्त के द्वारा सीमाबद्ध होने के कारण बद्ध है। अथवा हमारे कुछ दार्शनिकों की भाषा में, 'प्रतीत होता है, मानो वह बद्ध हो गयी है, पर वास्तव में वह बद्ध नहीं है।' (२/१०-११)

आदमी भ्रमवश अपने से बाहर विभिन्न देवताओं के अनुसंधान में रहता है, पर जब उसके अज्ञान का चक्कर समाप्त होता है, तो वह पुनः लौटकर अपनी आत्मा पर आ टिकता है। जिस ईश्वर की खोज में वह दर-दर भटकता रहा, वन-प्रान्तर तथा मन्दिर-मस्जिद को छानता रहा, जिसे वह स्वर्ग मैं बैठकर संसार पर शासन करनेवाला मानता रहा, वह कोई अन्य नहीं, बल्कि उसकी अपनी ही आत्मा है। वह मैं है, और मैं वह। मैं ही (जो आत्मा हूँ) ब्रह्म हूँ, मेरे इस तुच्छ 'मैं' का कभी अस्तित्व नहीं रहा। (२/२१३)

ईश्वरोपासना करने के लिए प्रतिमा आवश्यक है, तो उससे कहीं श्रेष्ठ मानव-प्रतिमा विद्यमान ही है। यदि ईश्वरोपासना के लिए मन्दिर-निर्माण करना चाहते हो, तो करो, किन्तु सोच लो कि उससे भी उच्चतर, उससे भी महान मानव-देह रूपी मन्दिर तो पहले से ही विद्यमान है। (८/३३)

जीवित ईश्वर तुम लोगों के भीतर रहते हैं, तब भी तुम मन्दिर, गिरजाघर आदि बनाते हो और सब प्रकार की काल्पनिक झूठी चीजों में विश्वास करते हो। मनुष्य-देह में स्थित मानव-आत्मा ही एकमात्र उपास्य ईश्वर है। पशु भी भगवान के मन्दिर हैं, किन्तु मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ मन्दिर है – ताजमहल जैसा। यदि मैं उसकी उपासना नहीं कर सका, तो अन्य किसी भी मन्दिर से कुछ भी उपकार नहीं होगा। जिस क्षण मैं प्रत्येक मनुष्य-देहरूपी मन्दिर में उपविष्ट ईश्वर की उपलब्धि कर सकूँगा, जिस क्षण मैं प्रत्येक मनुष्य के सम्मुख भक्ति भाव से खड़ा हो सकूँगा और वास्तव में उनमें ईश्वर देख सकूँगा, जिस क्षण मेरे अन्दर यह भाव आ जायेगा, उसी क्षण मैं सम्पूर्ण बन्धनों से मुक्त हो जाऊँगा, बाँधने वाले पदार्थ हट जायेंगे और मैं मुक्त हो जाऊँगा। (८/२९-३०)

सम्पादकीय

श्रीरामकृष्ण द्वारा अनुमोदित नारदीय भक्ति

मानव-जीवन का उद्देश्य अपने अन्त:स्थ परमेश्वर की अनुभूति कर संसार के भव-बन्धनों से सदा-सर्वदा के लिये मुक्त हो जाना है। इस क्षणिक नर-शरीर में सद्गुरु की कृपा प्राप्त कर भी जो ईश्वरानुभूति का प्रयत्न नहीं करता, वह आत्महत्यारा और दुर्भाग्यशाली है। शंकराचार्यजी भी कहते हैं कि **मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रय:।** इन तीनों दुर्लभ सुयोगों को प्राप्त कर भी यदि कोई ईश्वर-दर्शन के लिये यथायोग्य प्रयास न करे, तो वह सचमुच ही दुर्भाग्यशाली है। मनुष्य-जीवन के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुये युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण देव भी कहते थे – मानव-जीवन का उद्देश्य ईश्वर-प्राप्ति है।

ईश्वरानुभूति या भगवद्दर्शन के लिये शास्त्रों में ऋषि-मुनियों और आचार्यों ने कई साधना-पथों – राजयोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदि का निर्देश किया। उसमें परिस्थिति, मानवस्वभाव और रुचि के अनुसार भक्तिमार्ग को विशेष उपयोगी और सुरक्षित दर्शाया गया। नारदजी भी कहते हैं – **अन्यस्मात् सौलभ्यं भक्तौ।।**[१] – अन्य की अपेक्षा भक्ति सुलभ है। इतना ही नहीं, नारदजी कहते हैं – **शान्तिरूपात्परमानन्दरूपाच्च।।**[२] – भक्ति शान्तरूपा और परमानन्दरूपा है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने तो भक्ति को राजमार्ग तक की संज्ञा दे दी। गोस्वामीजी कहते हैं –

गुरु कह्यो मोहि राम भजन नीको
मोहि लगत राज डगरो सों।।

भगवान श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं – ''कर्मयोग बड़ा कठिन है। अगर निष्काम कर्म न कर सके, तो वह बन्धन का कारण ही होता है। इस पर आजकल अन्नगत प्राण हो रहे हैं। अतएव विधिवत् सब कर्मों के करने का समय ही नहीं रहा।'' 'कलिकाल के लिये कर्मयोग ठीक नहीं, भक्तियोग ही ठीक है।'' ''कलिकाल में वेदोक्त कर्मों के करने का समय कहाँ है? इसीलिये कलि में नारदीय भक्ति चाहिये।''[३]

यहाँ हम देखते हैं कि श्रीरामकृष्ण ने ईश्वर-दर्शन हेतु भक्तियोग के निदर्शन के साथ-साथ नारदीय भक्ति का उल्लेख किया कि नारदीय भक्ति चाहिये। आइये देखते हैं कि नारदीय भक्ति क्या है और किस प्रकार वह भक्ति-तत्त्व ईश्वरानुभूति में सबके लिये उपयोगी है और श्रीरामकृष्ण ने कैसे अपने उपदेशों में उन्हें आश्रय दिया और अपने भक्तों को उस मार्ग से ईश्वर-आराधना का निर्देश दिया।

नारदीय भक्ति क्या है? इस सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण स्वयं कहते हैं – ''नारदीय भक्ति है – उनके नाम और गुणों का कीर्तन करना।''[४]

जब श्रीरामकृष्ण-वचनामृत ग्रन्थ के लेखक श्री महेन्द्रनाथ गुप्त 'मास्टर महाशय' श्रीरामकृष्ण का दर्शन करने आये, तो उनकी जिज्ञासा पर श्रीरामकृष्ण के उत्तर द्रष्टव्य हैं –

मास्टर – ईश्वर में मन कैसे लगे?

श्रीरामकृष्ण – सर्वदा ईश्वर का नाम-गुणगान करना चाहिये। सत्संग करना चाहिये। बीच-बीच में भक्तों और साधुओं से मिलना चाहिये। दिन-रात विषय के भीतर पड़े रहने से मन ईश्वर में नहीं लगता। कभी-कभी निर्जन स्थान में जाकर ईश्वर का चिन्तन करना बहुत आवश्यक है। प्रथम अवस्था में बीच-बीच में एकान्तवास किये बिना ईश्वर में मन लगाना बड़ा कठिन है।[५]

५ मार्च, १८८२ का दिन था। उस दिन एक भक्त ने श्रीरामकृष्ण से पूछा – महाराज, इस प्रकार के संसारी जीवों के लिये क्या कोई उपाय नहीं है? श्रीरामकृष्ण ने बड़ी सहृदयता से कहा – ''कभी-कभी साधुओं का संग करना चाहिये। कभी-कभी निर्जन स्थान में ईश्वर का स्मरण और विचार करना चाहिये। परमात्मा से भक्ति और विश्वास की प्रार्थना करनी चाहिये।''

११ मार्च, १८८२ के सत्संग में भगवान श्रीरामकृष्ण मास्टर से कहते हैं – ''मानव जीवन का उद्देश्य है, ईश्वर से प्रेम करना। जिस प्रकार वृन्दावन में गोप-गोपीगण, राखालगण श्रीकृष्ण से प्रेम करते थे। जब श्रीकृष्ण मथुरा

चले गये, राखालगण उनके विरह में रो-रोकर घूमते थे।''

ईश्वर-दर्शन हेतु भक्तों के लिये श्रीरामकृष्ण के जो उपदेश हैं, यदि उनका सारांश प्रस्तुत किया जाय, तो इस प्रकार होगा – १. सत्संग करो, साधुसंग करो २. उनके नाम और गुणों का कीर्तन करो ३. एकान्तवास करो, निर्जन में ईश्वर-स्मरण करो ४. परमात्मा से भक्ति और कृपा के लिये प्रार्थना करो ५. ईश्वर से प्रेम करो। ६. विश्वास करो। ७. व्याकुल होओ।

इसमें प्रथम है **सत्संग** करो। श्रीरामकृष्ण भक्तों को सत्संग करने का, साधु संग करने का, भक्तों का संग करने का बार-बार उपदेश देते हैं। शास्त्रों में सत्संग की बड़ी महिमा बतायी गयी है।

भगवान के अनन्य भक्त देवर्षि नारदजी कहते हैं – **मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपालेशाद्वा।।**[६]

– 'भक्ति की प्राप्ति मुख्यतया महापुरुषों की कृपा से अथवा भगवत्कृपा के लेशमात्र से होती है।' इसके आगे वे कहते हैं – **महत्संगस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च।।**[७]

– 'परन्तु महापुरुषों का संग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है।' लेकिन जब भगवत्कृपा से ऐसा सुदुर्लभ सत्संग प्राप्त हो, तो भगवान की असीम कृपानुभूति कर उसका सेवन करना चाहिये। सत्संग की महिमा के सम्बन्ध में लंकिनी ने हनुमानजी से कहा था –

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सत्संग।।[८]

– हे तात ! स्वर्ग और अपवर्ग – मोक्ष के सभी सुखों को तराजू के एक पलड़े पर रखा जाय, तो वे सभी मिलकर (दूसरे पलड़े पर रखे) उस सुख के समतुल्य नहीं हो सकते, जो क्षण मात्र के सत्संग से होता है।

भगवान श्रीकृष्ण ने उद्धवजी से कहा था कि सत्संग के द्वारा मुझे सहजता से प्राप्त किया जा सकता है।

व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः।
यथावरुन्धे सत्संगः सर्वसंगापहो हि माम्।।
सत्संगेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः।
गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः।।
... बहवे मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्रकायाधवादयः।।[९]

सत्संग साधन और सिद्धि दोनों है। पवहारी बाबा कहा करते थे – 'जवन साधन, तवन सिद्धी' – अर्थात् जो साधन है, वही सिद्धि है। भौतिक जगत में कार्य सिद्ध होने के बाद साधनों का त्याग कर दिया जाता है। जैसे गन्तव्य तक पहुँचने के बाद वाहनों को छोड़ दिया जाता है। लेकिन आध्यात्मिक जगत में ईश्वरानुभूति होने के बाद जप-ध्यान-तपस्यादि का त्याग नहीं किया जाता। जिन जपादि साधनों से भक्त ईश्वर-दर्शन करता है, ईश्वर-दर्शन के बाद संसार उन्हीं भगवान की लीला-स्थली है, यह अनुभव कर संसार में सर्वत्र उनकी सत्ता का बोध करते हुये वह भगवान की लीला और उनके गुण-चिन्तन में ही तल्लीन रहता है।

सत्संग से बहुत से संशयों का, भ्रान्तियों का सहजता से निवारण हो जाता है। गरुड़जी को संशय हुआ, तो कागभुसुंडीजी के सत्संग से उनका संशन-नाश हुआ। जब विवेकानन्द को संशय हुआ, तो श्रीरामकृष्ण के सान्निध्य से उनका संशय दूर हुआ। सत्संग संशयनाशक और ज्ञानकोष की कुंजी है, अमृतसिन्धु का प्रवाहित प्रबल स्रोत है। इसलिये नारदजी और भगवान श्रीरामकृष्ण देव भक्तों को सत्संग करने के लिये, साधु-संग करने के लिये बार-बार परामर्श दे रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण देव साधुसंग करने को कहते हैं। सन्तों के सान्निध्य में किया गया सत्संग तो अत्यन्त मंगलकारी होता है। सन्तों का सान्निध्य, उनकी वाणी, उनका आशीष, उनका संरक्षण, जिस महामानव को प्राप्त हो, वह संसार में सबसे बड़ा भाग्यशाली है, क्योंकि भगवान स्वयं सन्त के रूप में उसकी रक्षा कर रहे हैं। सन्तों का चरण-रज पाने के लिये भगवान स्वयं सन्तों के पीछे-पीछे घूमते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा था –

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः।।[१०]

– निरपेक्ष, शान्त, निर्वैर, समदर्शी मुनि के पीछे-पीछे मैं नित्य घूमता रहता हूँ, ताकि उनके चरणों की धूलि से मैं पवित्र हो सकूँ।

सन्त स्वयं तीर्थ सदृश होते हैं। उनके चरण-रज जहाँ पड़ते हैं, वहाँ तीर्थ बन जाता है। तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि। सन्तों को सचल तीर्थ कहा जाता है।

साधुओं के संग का एक बड़ा सुन्दर आख्यान है। राजा

शेष भाग पृष्ठ २७४ पर

मन्दिर शताब्दी विशेष

मन्दिर का आध्यात्मिक रहस्य

डॉ. अन्वय मुखोपाध्याय

सहायक प्राध्यापक, मानविकी व सामाजिक विज्ञान विभाग, आई.आई.टी, खड़गपुर

(इस वर्ष २०२४ में स्वामी विवेकानन्द और स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज की बेलूड़ मठ स्थित मन्दिर स्थापना की शताब्दी के उपलक्ष्य में मन्दिरों से सम्बन्धित आलेख-शृंखला प्रकाशित की जा रही है।)

प्राचीन काल से ही मानव-देह की तुलना मन्दिर के साथ और मन्दिर की तुलना मानव-देह के साथ की गयी है। सनातन धर्म ने विश्व की परम सत्ता को मनुष्य में, समस्त प्राणियों में तथा जड़ वस्तुओं में भी जाज्वल्यमान होते देखा है। मंदिर की मानव-देह से तुलना करने पर उसके गर्भ-गृह को मनुष्य की हृदय-गुहा के प्रतीक के रूप में देखा जा सकता है, जहाँ ब्रह्मसत्ता प्रकाशमान है। उपनिषदीय व तान्त्रिक आध्यात्मिकता में मानव-देह देवालय अथवा 'ब्रह्मपुर' के रूप में ही कई बार विवेचित हुई है। वर्तमान समय में मन्दिर के आध्यात्मिक महत्त्व को आलोकित करने की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है, जब कृत्रिम आध्यात्मिकता के ध्वजाधारी मन्दिर के महत्त्व को लघु कर के देखते हैं। हिन्दू धर्म में आध्यात्मिक व्यक्ति कई कारणों से मन्दिर में जा सकता है, गर्भगृह में प्रतिष्ठित देवता से सकाम, जागतिक सुख-सम्पत्ति आदि बहुत कुछ माँग सकता है अथवा निष्काम भाव से केवल मात्र देव-दर्शन के लिये भी जा सकता है। मंदिर को धर्म के बाह्य आडम्बरों की अट्टालिका के रूप में देखना सर्वथा भूल ही है। किसी भी मन्दिर का द्वार आध्यात्मिक साधना के लिए सर्वथा उन्मोचित रहता है। कोई भी साधक, साधना के जितने भी प्रारम्भिक स्तर पर ही क्यों न हो, जब वह मन्दिर में जाता है, तो वह यात्रा जाने-अनजाने में ही आध्यात्मिक अभियात्रा की प्रतीक हो उठती है। आध्यात्मिक यात्रा का अर्थ है – बाह्य जगत से अन्तर्जगत् की यात्रा, बाह्य आलोक से हृदय-गुहा की गहन गुप्त ज्योति की ओर यात्रा। जब कोई व्यक्ति किसी सुबृहद् हिन्दू देवालय में प्रवेश करता है, तो क्रमशः तोरण द्वार अथवा गोपुरम् को पार करता हुआ नाट मण्डप से होता हुआ गर्भगृह की ओर अग्रसर होता है, मानो जैसे श्री देवीखड्गमाला स्तोत्र की साधना के माध्यम से श्रीचक्र के बाहरी द्वार से शिव-शक्ति सम्मिलन के प्रतीक रूप में केन्द्रस्थ बिन्दु की यात्रा कर रहा हो। शरीर के भीतर जो गहन लोक है, हृदय अथवा ब्रह्मरन्ध्र, उसकी ओर, विश्व के

गहनतम प्रदेश की ओर, समग्र ब्रह्माण्ड के आत्मस्वरूप केन्द्र बिन्दु की ओर यात्रा कर रहा हो। नाट मण्डप में साधक का मिलन दूसरे साधकों व उपासकों के साथ होता है – कोई नृत्य-गीतादि के द्वारा, तो कोई ध्यान-तपस्यादि के माध्यम से, अन्य स्तोत्र-पाठ एवं वन्दनादि से विश्व की परमसत्ता की उपासना में लीन रहते हैं।[२] साधक यहाँ प्रतीक्षा कर सकते हैं, अपने आध्यात्मिक यात्रा पथ को पुष्पित करने के लिए संगीत, नृत्य, स्तोत्र-पाठ या नीरव साधना से 'ज्ञान दीप' प्रज्ज्वलन के लिये, जिसके आधार पर वह गर्भ-गृह में 'ब्रह्ममयी' के मुख-मण्डल दर्शन करने के लिए जायेंगे। भगवान श्रीरामकृष्ण के अति-प्रिय एक श्यामा संगीत में इस तरह ज्ञान-दीप को जलाकर जीवन के अतिगहन में 'ब्रह्ममयी' के दर्शन का आनन्द सुचित्रित हुआ है।

नाट मन्दिर से साधक चलते हैं गर्भ-गृह की ओर, जहाँ देवालय के हृदय-प्रकोष्ठ में उनके प्राण-प्रिय देवता विराजमान हैं। यदि वह आध्यात्मिकता के उच्च स्तर में

पूर्व से ही प्रतिष्ठित है, तो वह अपने प्रिय देवता के दर्शन मात्र से ही यह उपलब्धि करेगा कि वह अपने इष्ट के साथ अभिन्न है – देव और मानव, गर्भगृह में स्थित प्रतिमा अथवा प्रतीक और उसका दर्शनकर्ता मानव अभिन्न है। अथवा यदि वह भक्तिमार्गी है, तो उसकी भावना होगी कि जिस प्रकार वह देव-दर्शन के लिये प्रतीक्षारत था, ठीक वैसे ही उसके इष्ट भी उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। ये देवता उदासीन नहीं, अपितु प्रेममय हैं और यह एक पारस्परिक दर्शन है।

उपासक को देखने के लिये गर्भगृह में जगन्नाथ अपने विशाल नेत्रों की पलकें बिछाए प्रतीक्षारत हैं। ऐसे ही तान्त्रिक देवता भी भक्तों के स्पर्श की प्रतीक्षा करते हैं। तन्त्रपीठों में जब भक्त गर्भगृह में भगवती को स्पर्श करते हैं, (उदाहरणार्थ कामाख्या मन्दिर में) तब भगवती भी उन्हें अपना स्पर्श प्रदान करती हैं। भक्त के प्रेम व भक्ति का वह स्पर्श भगवती के करुणामय प्रतिस्पर्श से धन्य होता है। अतएव मन्दिर केवल मात्र उन्नादित शब्दमयता का स्थल नहीं है, अपितु सारे शब्दों के अन्दर नीरव देवमयत्व का, जनारण्य में निर्जन भगवत-विलास की रंगभूमि है।

हमें यह याद रखना चाहिए कि हिन्दू मन्दिर मात्र पाषाणमय प्रासाद नहीं है, अपितु कई सारे क्षेत्रों में एक हिन्दू मन्दिर एक अविभाज्य प्राकृतिक परिमण्डल के अन्दर प्रथित रहता है। अनेकों मन्दिर नदी-तट पर, अरण्यों में अथवा पर्वतों पर अवस्थित हैं। अधिकांश शक्तिपीठों में भगवती के श्रीअंग प्रकृति के बाह्य लीला के अंदर समाहित हैं – कुण्ड के जल में या वृक्षमूल अथवा पर्वत पर (या उसके अंगस्वरूप प्रस्तरों में) सतीदेहांश रहता है। ऐसे स्थलों में, जहाँ मन्दिर प्राकृतिक समग्रता और पवित्रता के परिण्डल में प्रतिष्ठित है, आध्यात्मिकता प्रकृति के विरुद्ध नहीं वरन्, प्रकृति एवं पुरुष के सम्मिलन के निगूढ़ रहस्यों की ओर संचालित होती है। बेलूड़ मठ स्थित श्रीरामकृष्ण के भव्य मन्दिर में जब आप दर्शनार्थ जाते हैं, तब आपको स्पर्श करती है सुरधुनी गंगा से आती हुई पवित्र वायु, श्रीश्रीमाँ के स्नेह-स्पर्श की तरह। दक्षिणेश्वर के भवतारिणी मन्दिर में भागीरथी की कल-कल ध्वनि सुनते-सुनते अथवा ॐकारेश्वर में माँ नर्मदा के जल-तरंग का सान्निध्य उपभोग करते-करते या फिर मैहर में शारदा देवी के मन्दिर में प्रवेश करते-करते, चहुँ ओर पर्वतीय प्रकृति की अपूर्व शोभा का अवलोकन करते हुए आध्यात्मिक हिन्दू यह उपलब्धि कर पाता है कि कैसे सनातन धर्म वैश्विक प्रकृति की उपासना एवं सर्वातीत परमसत्ता की साधना को एक ही माला में पिरोता है। हिन्दू आध्यात्मिकता में यदि मन्दिर देवों का गृह है, तब वह अद्वितीय अद्वैत ब्रह्मसत्ता का आलय है समग्र विश्व, यह जड़ नही है, अपितु प्राण-तरंगों से उच्छलित है। अमरकंटक में माँ नर्मदा के मन्दिर में उनकी मूर्ति और उनका नीरमय स्वरूप समतीव्रता से हमें उनके ध्यान में समाहित कराते हैं।

मंदिरों के पूजा-पाठ केवल एक प्राणहीन आचार नहीं हैं। आध्यात्मिक साधक के लिए पूजा के सभी अंग महत्त्वपूर्ण हैं – आरती का हर पर्व जैसे आत्मनिवेदन की एक-एक पद्धति है। आरती की घण्टा-ध्वनि मन्दिर को स्वर्ग व मर्त्य के संयोग-स्थल के रूप में परिणत करती है। उस दिव्य नाद के माध्यम से शब्दातीत ब्रह्म शब्दमयी पृथ्वी की ओर उतर आते हैं तथा शब्दमयी पृथ्वी से हम श्रीश्रीचण्डी के वे 'अनुच्चार्या', 'परावाङ्मयी' 'अर्धमात्रा' की ओर उर्ध्वचारी होते हैं। मंदिर ही है वह स्थल, जहाँ हम सेवा का सही अर्थ सीखते हैं। मन्दिर के भूमितल को नियमित रूप से सम्मार्जन करके भी देवताओं को अपना श्रद्धामय प्रेम अपर्ण किया जा सकता है। पुरी जगन्नाथ मन्दिर में प्रख्यात उड़िया गायक रघुनाथ पाणिग्राही तथा उनकी धर्म-पत्नी विख्यात नृत्य-शिल्पी संयुक्ता पाणिग्रही ने एक साथ नृत्य व गीत के माध्यम से भगवान के चतुर्धा मूर्ति को अनुपम आध्यात्मिक सेवा निवेदन किया था। रघुनाथजी अपनी ये स्मृतियाँ भक्ति-द्रवित स्वर में सुनाते हैं।[३]

अवतारों की जन्म-भूमि पर बने मन्दिरों – अयोध्या में श्रीराम जन्मभूमि मन्दिर अथवा कामारपुकुर में श्रीरामकृष्ण के मन्दिर के आध्यात्मिक माहात्म्य का हमलोग अभी भी गहन पर्यालोचना नहीं कर सके हैं। ऐसे सभी स्थान और वहाँ स्थित देवालय, केवल देवस्थान नहीं हैं, अपितु ये मन्दिर अवतार-तत्त्व की दार्शनिक गम्भीरता को सहज रूप से किन्तु महनीय ढंग से प्रकट करते हैं। इस प्रकार के मन्दिर ऐसे स्थलों पर स्थित हैं, जहाँ परब्रह्म ने मानव-अवतार धारण किया था, सीमातीत परमसत्ता मानव-देह धारण कर मायाविग्रह-परिग्रह करके, मानव हृदय को और भी स्पष्टता के साथ स्पर्श करने के लिए सीमाओं में उतर आयी थी। अवतार के अवतरण-स्थल में स्थित ये देवालय मानव व देवताओं का जयघोष एक ही साथ करने के लिए प्रोत्साहित

करते हैं और हमारे हृदयस्थ दिव्यता को जाग्रत करने के लिए उत्साह जगाते हैं। भगवान श्रीरामकृष्ण कहते हैं कि आद्याशक्ति के माध्यम से ही अवतार-लीला सम्भव होती है। अवतार की उपासना के द्वारा ही हम विश्व ब्रह्माण्ड की जाग्रता ब्रह्म-कुण्डलिनी को स्पर्श करते हैं।[४] इसलिये अवतारों के मन्दिर गहनतर अर्थ में ब्रह्म और ब्रह्माण्ड का, मानव व ईश्वर का, निराकार और साकार का मिलन-स्थल है। वैदिक आध्यात्मिकता में स्नात कोई साधक वरेण्य 'द्यावापृथिवी' की सुस्पष्ट एवं निकटतर प्रतिमा के रूप में इसे देख सकते हैं।

भारत के मन्दिरों में प्रसारित रहता है केवल युगों की साधना का इतिहास ही नहीं, परन्तु वह युगलालित आध्यात्मिक साधना का निर्यास भी। तारापीठ में वामाक्षेपा की मातृ-साधना या दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण की भवतारिणी की साधना अथवा रणछोड़जी के मन्दिर में मीरा की संगीतमयी कृष्ण-साधना, ये केवल इतिहास अथवा अतीत के विषय नहीं हैं, ये साधनाएँ इन सभी देव-स्थानों के श्रीअंग में अविच्छेद्य यज्ञोपवीत सदृश संलग्न हैं।[५] इस प्रकार के सभी प्रख्यात मन्दिरों में एक आध्यात्मिक साधक जितने भी प्राथमिक स्तर का ही साधक क्यों न हो, वह भावघन दिव्य साधना के युग-युग संचित दिव्य स्पंदन को अनुभव करता है। काशी के मन्दिरों में, विविध शक्तिपीठों में, वृन्दावन के असंख्य वैष्णव देवालयों में यह आध्यात्मिक स्पन्दन पूर्वकालिक आध्यात्मिक साधक-साधिकाओं की दिव्य चेतना से इसी प्रकार नि:सृत है, जो आज की साधना को सहज बना देता है और आस्तिक्य भाव को गहनतर बना देता है। स्वामी नित्यात्मानन्द जी हमें स्मरण कराते हैं कि मन्दिर नित्य पूजा, आराधना, यज्ञ व तपस्या का स्थल है। ये सभी धार्मिक कर्म व आध्यात्मिक प्रयास किसी भी विख्यात हिन्दू मन्दिर को गूढ़ आध्यात्मिक स्पंदन में स्पन्दित करके रखते हैं।[६] नित्यात्मानन्द जी महाराज लिखते हैं – 'भक्तवृन्द जब मन्दिर में समवेत होते हैं, तब वहाँ उनके मन की सूक्ष्म सद्भावना और धार्मिक आवेग एक गहन आध्यात्मिक परिमण्डल का सृजन करता है।''[७] मन्दिर धर्म-पिपासुओं का मिलन-स्थल और आध्यात्मिक साधकों के एकत्र होने की पवित्र भूमि है। इसलिए एक सनातनी मंदिर कोई समाज-विमुख आध्यात्मिकता का पोषण नहीं करता, हमें मानव समाज के दूसरे सदस्यों की अवहलेना करने के लिए प्रोत्साहित नहीं करता। परन्तु यह मानव के साथ मानव के मिलन के माध्यम से एकत्र उपासना व कीर्तन के द्वारा ईश्वर और मानव के सेतु-बंधन को सम्भव करता है। ऐसे ही मन्दिर, जो लोग आध्यात्मिक प्रचेष्टा से दूर रहते हैं, उनमें आध्यात्मिक स्पंदन को विस्तारित करता है।

अन्तत: यह पूर्ण रूप से स्वीकार्य है कि मंदिर के आध्यात्मिक रहस्य पूणरूपेण केवल देव-मानव अथवा महामानव के सम्मुख उद्घाटित होते हैं। भगवान श्रीरामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द, आनन्दमयी माँ आदि जब देवालयों में गये हैं, तब माया-प्रपंच छिन्न करके मायातीत ब्रह्मशक्ति, मायाधीश ब्रह्म को, विश्व की परमसत्ता का अपने सम्मुख उदघाटित किया है। जो भी भक्तगण उनके सहयात्री हुए, वे भी उनके दिव्यानुभव के साक्षी होकर सुअवसर पाकर धन्य हो गये। यहाँ Diana Eck का यह विचार ध्यातव्य है – "A common sight in India is a crowd of people gathered in the courtyard of a temple or at the doorway of a streetside shrine for the darsan of the deity. Darsan means 'Seeing'. In the Hindu ritual tradition it refers especially to religious seeing, or the visual perception of the sacred... The central act of Hindu worship, from the point of view of the lay person, is to stand in the presence of the deity and to behold the image with one's own eyes, to see and to be seen by the deity."[८]

इस वक्तव्य का समर्थन करके भी अनुभव करना आवश्यक है कि यद्यपि सभी तीर्थयात्री वहाँ अधिष्ठित तीर्थ देवता का दर्शन करते हैं और तीर्थ-देवता भी प्रेम-चक्षुओं से उनका दर्शन करते हैं, भक्त व भगवान दोनों ही एक-दूसरे के 'नयन-पथगामी' होते हैं, तथापि भक्त के उस नयन को प्रकृति रूप से संजीवित करने के लिए उन सभी अवतारों अथवा मानव-देहधारी भगवान की आवश्यकता होती है, जिनके 'दर्शन' भिन्न स्तर में क्रियाशील हैं, जो श्रीरामकृष्ण अथवा उनके शिष्यों के समान ही उनके दिव्य नयनों से देवता को केवल जीवन्त स्वरूप में दर्शन कर ही तुष्ट नहीं होते, वरन् अपने भक्तों के भी नयन-पथ को अपने दिव्य आलोक से उन्मोचित करते हैं।

ऐसे गुरु व आचार्य हमारे नयन और उसके पथ में दर्शनेच्छा और दर्शनक्षमता में रश्मि-सेतु की संरचना करते

शेष भाग पृष्ठ २५३ पर

विवेकानन्द-स्मृति

मोहनलाल साह, अलमोड़ा

यह मेरा परम सौभाग्य है कि मैं विश्ववन्दित मनीषी स्वामी विवेकानन्द की जन्मशतवार्षिकी समारोह में शामिल हो सका। मुझे जीवन में चार बार उनके साथ साक्षात्कार करने का दुर्लभ अवसर मिला।

प्रथम बार मैंने उनके पवित्र दर्शन सन् १८९० में पाया था, जब वे परिव्राजक संन्यासी के रूप में अलमोड़ा भ्रमण में आये थे और लाला बद्री साह के आतिथ्य में थे। मैं अचानक वहाँ उपस्थित हुआ और उनके पुण्य दर्शन पा गया। उन्हें भूमिष्ठ प्रणाम निवेदन कर मैंने उनसे विदा ली। यद्यपि उस समय मेरी आयु मात्र बारह वर्ष थी, तब भी प्रथम दर्शन की वह स्मृति आज भी मेरे लिए उज्ज्वल है, अमर है। उनके दीप्तोज्ज्वल रूप ने मुझमें एक विलक्षण-सा आकर्षण पैदा कर दिया, जैसेकि भगवान बुद्ध स्वयं दूसरी बार उनके वेश में प्रकट हों। मैंने आज तक उनके जैसा किसी अन्य को नहीं देखा।

दूसरी बार उनके दर्शन सन् १८९७ में पाया। अमेरिका में विश्वधर्म सम्मेलन में वक्तव्य देते हुए, वे अपने पाण्डित्यपूर्ण गहन विद्वत्ता से विश्व को विजय कर अभी-अभी भारत लौटे हैं। उन्हें बधाई देने के लिए हजारों की संख्या में लोग उमड़ पड़े। काफी संख्या में फूलों का गुलदस्ता देकर उनका स्वागत किया गया। उस समय की घटना को स्वामीजी के साथी गुडविन साहब के एक लेख को उद्धृत कर अच्छी तरह से वर्णित किया जा सकता है –

''अलमोड़ा के पास लोधिया में नगरवासियों की बड़ी भीड़ दोपहर में यात्रा के अन्त में उनके आने की प्रतीक्षा कर रही थी। उनके अनुरोध पर स्वामीजी को एक सुसज्जित घोड़े पर चढ़कर शोभायात्रा के साथ नगर-परिक्रमा करना पड़ा। उस शोभायात्रा के बाजार में पहुँचने के बाद ऐसा लग रहा था, मानो क्षेत्र के सभी लोग इसमें शामिल हो गए हों।

इस विशाल जनसमागम के कारण स्वामीजी की यात्रा में कुछ अव्यवस्था देखने को मिली। हजारों हिन्दू महिलाएँ अपने घरों की खिड़कियों और छतों से स्वामीजी की शोभायात्रा पर चावल और पुष्पों की वर्षा कर रही थीं। शहर

रामकृष्ण कुटीर, अलमोड़ा

के बीचों-बीच पुराने बाजार के एक भाग में सामियाना टांगकर करीब तीन हजार लोगों के लिए बैठने की व्यवस्था की गई थी। रास्ते में सुन्दर दृश्य-अंकित कपड़े लटकाए गये थे और किनारों को अर्धवृत्ताकार फूल-मालाओं और झंडों से सजाया गया था। इसके अतिरिक्त प्रत्येक घरों को प्रकाश से सजाया गया था, कुल मिलकर पूरा शहर आलोकशिखा से जगमगा रहा था। स्थानीय वाद्यों के साथ भीड़ की लगातार जय-ध्वनि से पूरा दृश्य विशेष रूप से उल्लेखनीय था। यहाँ तक कि स्वामीजी के सम्पूर्ण अभियान में कोलम्बो से उनके साथ रहनेवालों को भी यह आश्चर्यजनक लगा। लगभग चार-पाँच हजार लोगों की हलचल और उमंग भरी भीड़ में औपचारिक स्वागत का क्रम स्वाभाविक रूप से संक्षिप्त था। अभिनन्दन समिति की ओर से पंडित ज्वालादत्त जोशी ने हिन्दी में स्वागत भाषण दिया। इसके पश्चात् स्वामीजी के मेजबान लाला बद्री साह और पंडित हरिराम पाण्डेय ने भाषण दिया। संस्कृत भाषा में अत्यन्त प्रशंसनीय व्याख्यान से एक विद्वान ने स्वामीजी का स्वागत किया।'' सौभाग्यक्रम से मैं भी अलमोड़ा के उस पर्वतीय सभा में एक महान धर्मवीर के स्वागत को देख रही असंख्य मनुष्यों की भीड़ में से एक था।

स्वामीजी को मैंने तीसरी बार १८९७ में अलमोड़ा में ही देखा था। तब वह वायु-परिवर्तन के उद्देश्य से कुछ दिनों के लिए ही आये थे। उनके साथ कई भारतीय और विदेशी शिष्य भी थे। उस समय ही अलमोड़ा के माल में थॉम्पसन हाउस नामक एक विशाल बंगले में 'प्रबुद्ध भारत' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। एक दिन मुझे स्वामीजी के शिष्य और पत्रिका के सम्पादक स्वामी स्वरूपानन्द महाराज से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। वे मुझ पर अत्यन्त दयालु थे। मैं उनके व्यवहार से इतना अभिभूत था कि मैं उनके साथ रहने की इच्छा लिए अगले दिन ही थॉम्पसन हाउस चला गया। सम्भवत: यह अक्तूबर महीने का कोई समय था। उस दिन से लेकर आज तक रामकृष्ण मठ के संन्यासी महाराज लोगों के साथ मेरे सम्बन्ध अपरिवर्तित रहे और समय के साथ और भी मधुर होते गये। इसके लगभग चार महीने बाद, सन् १८९८ के मार्च मास में 'प्रबुद्ध भारत' पत्रिका मायावती में अपने स्थायी स्थान पर चली गई। वहाँ स्वामीजी के एक अंग्रेज शिष्य दम्पती – कैप्टन और श्रीमती सेवियर ने अद्वैत आश्रम की स्थापना की। मैं भी अन्य सहकर्मियों के साथ मायावती चला गया था। स्वामी स्वरूपानन्द महाराज मायावती आश्रम के पहले अध्यक्ष हुए। १९०६ में उनके असामयिक देहत्याग के बाद उनके गुरु-भाई स्वामी विरजानन्द महाराज को उनका उत्तराधिकारी बनाया गया। यहीं पर मैंने चौथी बार स्वामीजी से साक्षात्कार किया।

३ जनवरी, १९०१ को स्वामीजी अपने कुछ गुरु-भाइयों और शिष्यों के साथ मायावती आए। प्रचण्ड और भारी हिमपात के बावजूद भी स्वामीजी का वह पाक्षिक प्रवास बड़े हर्ष और उल्लास के साथ व्यतीत हुआ। निस्संदेह हिमालय-स्थित इस मठ के इतिहास की यह सबसे स्मरणीय घटना थी। स्वामीजी मायावती में अधिकांश समय अध्ययन और लेखन-कार्य में बिताया करते थे। मुझे 'प्रबुद्ध भारत' पत्रिका के कार्यालय में कार्य करते हुए उन्हें कुछ प्रूफ दिखाने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। उन्हें काफी निकट से देखकर मैं भक्ति और श्रद्धा से प्राय: सिहर उठा। कितना दयालु हृदय है उनका ! दरिद्र, आर्त व पीड़ितों के प्रति कितना गहरा अनुभव ! दरिद्रों के प्रति उनकी इसी भावना ने उनके शिष्यों को अनुप्राणित किया, जिनमें से कुछ को मैंने बहुत ही समीप से देखा है। उन्होंने गरीबों, उपेक्षितों, उत्पीड़ितों को ईश्वर की प्रतिमूर्ति के रूप में देखा और उनकी सेवा उसी भावना से की। इसी भावना से ही रामकृष्ण मिशन में मानव-कल्याणमूलक सेवा की एक पारंपरिक धारा तैयार हुई है।

मेरे हृदय में इस समय जो गहरा भावावेग हुआ है, मैं उसे यहाँ व्यक्त नहीं कर सकता। मायावती अद्वैत आश्रम के साथ मेरे लम्बे समय के जुड़ाव का अनुभव, रामकृष्ण संघ के कई संन्यासी महाराज लोगों के साथ मेरा व्यक्तिगत सम्पर्क, आश्रम में रहने की कई सुखद स्मृतियाँ, मेरे प्रति अन्य आश्रमवासियों की अन्तर्हीन दया, स्नेह और प्रेम; ऐसे कितने ही मधुर क्षणों ने मेरे स्मृति को भर दिया है और मुझे भावुक कर दिया है। लेकिन सबसे बढ़कर मेरे स्मृति-भण्डार में एक ताज की तरह विराजमान है स्वामी विवेकानन्द की पवित्र स्मृतियाँ। स्वामीजी की स्मृति मेरे मन के रत्न-भण्डार में एक नक्षत्र के समान उज्ज्वल होकर मेरे हृदय में भर गई है। वह सुखद स्मृति आज भी मेरे पास सबसे अमूल्य सम्पत्ति है और जीवन भर इसी प्रकार प्रवाहित होती रहेगी। ○○○

पृष्ठ २५१ का शेष भाग

हैं, वे हमलोगों को बता देते हैं, मन्दिर में कौन हमारे लिये हमारी ही आध्यात्मिक प्रतीक्षा का अवसान करने के लिए प्रतीक्षारत है। इस प्रकार हमलोग श्रीयंत्र के केन्द्र बिन्दु में पहुँच जाते हैं, जहाँ सारे शब्द आदि 'स्फोट' में समाहित होते हैं, विश्व बिन्दु में परिणाम पाता है। वे 'नयनपथगामी' होते हैं, जो हमारे नयन के आदिभूत आलोक हैं। हम तभी मन्दिरों के प्रकृत गर्भगृह में आसीन होते हैं, जहाँ हमारे हृदय व देवालय का हृदय एक साथ एक परम ज्योति से ज्ञान-भक्ति और योग की अखण्ड दीपावली में उद्भासित हो उठता है। ○○○

सन्दर्भ सूत्र – १. स्वामी नित्यात्मानन्द, मानव जीवने मंदिरेर प्रभाव (नरेन्द्रपुर, कोलकाता : रामकृष्ण मिशन लोक शिक्षा परिषद), पृष्ठ ८-९ **२.** वही, पृष्ठ २६-२८ **३.** रघुनाथ पाणिग्राही, 'दुटि प्राण एक मन', अनुभूतिते श्रीजगन्नाथ, संपादन पीतवास राउत राय, अनुवादक भारती नदी, अशोक कुमार पटनायक एवं कुंतला पटनायक (कोलकाता, प्रभा प्रकाशनी, २००९) **४.** श्रीश्रीरामकृष्ण कथासार, संकलक श्रीकुमार कृष्ण नन्दी (कोलकाता : उद्बोधन, २०१६, पृष्ठ १९६-१९९ **५.** स्वामी नित्यात्मानन्द, पृष्ठ १०-११ **६.** वही, पृष्ठ १०-११, १७-२२ **७.** वही, पृष्ठ ११ **८.** Diana L. Eck, Darsan Seeing the Divine Image in India (Delhi Motilal Banarshidas, २००७) पृष्ठ ३

जीवन में सहजता कैसे आयेगी?

स्वामी सत्यरूपानन्द

पूर्व सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

जीवन में सहजता कैसे आयेगी? सहज का तात्पर्य होता है, जिसमें कुछ विकार न हो। हमलोगों में जो असहजता है, उसका कारण देखना चाहिये और उसे दूर करने का प्रयास करना चाहिये। जीवन में असहजता का कारण रहता है द्वेष। हम जब दूसरों से द्वेष करते हैं, तब हमारा मन दुर्बल होता है। दुर्बलता के कारण हम दूसरे से द्वेष करने लगते हैं। हममें कुछ कमी है, यहाँ तक कि दूसरे की प्रशंसा सुनकर भी मन में द्वेष आता है। इससे हम असहज हो जाते हैं। हमारे मन में अज्ञान है। इसलिये हम असहज हैं। अपने जीवन के उद्देश्य को जानने से सहजता आती है। जीवन में दुख का कारण अज्ञान है। हमारा सारा दुख अज्ञान के कारण होता है। जब हममें ज्ञान आ जाता है, तो हमारी असहजता मिट जाती है। जब हमारे मन के अनुकूल काम हो, तब हम सन्तुष्ट होते हैं और हमारे मन के विरुद्ध काम होता है, तब हम असन्तुष्ट होते हैं। जब हमारा मन सन्तुलित रहता है, तब हमारा मन सहजता में रहता है। अनुकूल-प्रतिकूल सब कुछ स्वीकार कर लेने से मन सहज हो जाता है। सहजता वही होती है, जो अनुकूलता और प्रतिकूलता में सन्तुलित रहता है।

सहजता आत्मा का स्वभाव है। सत्चितआनन्द हमारा स्वरूप है। जब हम अपने जीवन के उद्देश्य 'परमात्मा' को जान लेंगे, तब हममें सहजता आयेगी। दूसरों के प्रति हमारा व्यवहार सहज होगा। सभी प्रकार की असहजता को मिटाने के लिए पहले ज्ञान होना चाहिए। संसार निरन्तर बदल रहा है। संसार माने अज्ञान। हमें अपने भीतर देखना चाहिये। संसार के सब सद्गुण हममें आये हैं, ऐसा हमें लगता है। जीवन में सहजता आती है ज्ञान से, आत्मनिरीक्षण से और असहजता आती है अज्ञान से। ज्ञान और सहजता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। असहजता का अधिकांश कारण हमारा मन ही है। सहज होने पर आदमी सरल हो जाता है। यदि हमारे मन में कुटिलता आ रही है, तो हम सहज, सरल नहीं हो सकते। जीवन के सुख के पहले हमें अपने स्वभाव को देखना है। जब हम असहज हो जाते हैं, तो अनुकूलता में भी प्रतिकूलता दिखायी देती है। अपने स्वभाव को समझने के लिए हमें अपने व्यवहार को देखना-जानना चाहिए। सावधान व्यक्ति वही होता है, जो अपने चरित्र को देखता रहता है। चरित्र से व्यक्ति का स्वभाव ज्ञात होता है। जो जीवन में सहज हो जाता है, उसे संसार की छोटी-छोटी बातों में दुख नहीं होता। हम जीवन में असावधान रहते हैं, इसलिए सब गड़बड़ी होती है।

जो व्यक्ति केवल अपने लिए ही सब कुछ करता है, वह जीवित होते हुए भी मृत के समान है। मनुष्य योनि में कर्म की स्वाधीनता है। 'अजगर करे न चाकरी पंछी करे न काम। दास मलुका कह गये सबके दाता राम।'' हम मनुष्य योनि में आये हैं, तो हममें स्वाधीनता है। व्यक्ति चाहे तो स्वयं ईश्वर हो सकता है। मनुष्य को छोड़कर कोई ईश्वर-प्राप्ति नहीं कर सकता और मनुष्य को छोड़कर कोई आत्महत्या भी नहीं कर सकता। हमें स्वाधीनता का कैसा उपयोग करना है, यह देखना है। हम यदि सदिच्छा रखेंगे, तो कभी भी हम पराजित नहीं हो सकते। हम भीतर से अनुभव करें कि हमें कुछ नहीं चाहिए। यही हमारी आध्यात्मिकता की उपलब्धि है। जब तक हमें संसार असार, अनित्य नहीं लगेगा, तब तक हमारा मन चंचल होगा ही। इन्द्रिय-सुखों की ओर जितना अनुराग होगा, उतने ही हम भगवान की ओर बढ़ेंगे। हमारी आत्मा ही नित्य है। नित्य को पाकर के ही हम भगवान को पा सकते हैं। ○○○

कविता

व्रज की माधुरी

श्रीधर

कटि का घट है कटि ऊपर ही,
छवि देख रहीं सब गोधन गैया।
शिखि सुन्दर पंख पसार लखें,
जब गोकुल से पठई वन मैया।
द्रुम कुंज लता वन वृन्त झुलें,
सब झूम उठें बल गोपन भैया।
जब से मुरली मुरलीधर ले,
मृदुराग भरे नव तान कन्हैया।।

लोक संस्कृति में श्रीराम

श्रीधर प्रसाद द्विवेदी, पलामू, झारखण्ड

कहा जाता है – '**रामो विग्रहवान् धर्मः**।' अर्थात् राम स्वयं धर्म के मूर्तिमान स्वरूप हैं। जो भी धारणीय उदात्त गुण हैं, वे सभी राम में विद्यमान हैं। जहाँ राम साहित्य में धर्ममूर्ति हैं, वहीं इस लोक में मर्यादापुरुषोत्तम हैं, एक आदर्श राजा हैं, तो साथ ही 'निर्बल के बल राम' हैं। जिस किसी निर्बल के साथ थोड़ा-सा भी अन्याय होता है, तब राम सर्वोच्च न्यायकर्ता होते हैं। निर्बल यही आशा करता है कि 'राम निर्णय करेंगे'। लोक में वे अलौकिक हैं, तो अज्ञात के ज्ञाता भी हैं। किसी अज्ञात के ज्ञाता भी हैं। किसी अज्ञात के लिए लोक तर्क देता है कि 'राम जानें'। इस प्रकार राम जितने शिष्ट साहित्य में हैं, उससे कहीं अधिक लोक वाङ्मय में व्याप्त हैं। स्वयं गोस्वामी तुलसीदास जी रामकथा के स्रोत की चर्चा करते हुए कहते हैं कि –

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।

इस अन्यतोऽपि से उन्होंने लोक में प्रचलित रामकथा का ही संकेत किया है। लोक में प्रचलित गाथा में राम अलग-अलग प्रसंग में अलग-अलग रूप में उपस्थित होते हैं। अलग-अलग आंचलिक संस्कृतियों में उनका अपना एक अलग चित्र देखने को मिलता है।

लोक संस्कृति से तात्पर्य आम जन के लोक व्यवहार से है। लोक संस्कृति का तात्पर्य बताते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं – ''लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है, बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई यह समूची जनता है, जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं।'' राम मात्र काव्यों के महानायक ही नहीं, वरन् लोक की शक्ति हैं। वे केवल साधु-सन्तों के ही नहीं हैं, वरन् भारत के जन-जन मन के मानस हंस हैं। वे एक ओर आदर्श पुत्र हैं, तो दूसरी ओर आदर्श भाई भी हैं, आदर्श शिष्य हैं, तो प्रजा के लिए आदर्श कुमार हैं। एक ओर आदर्श पति हैं, तो दूसरी ओर आदर्श राजा, मित्र और शत्रु भी हैं। किसी भी सुखद क्षेत्र को, सुकाल को लोक 'राम राज्य' घोषित करता है। आज तक राम के समान कोई नीतिज्ञ राजा नहीं हुआ, इसीलिए तो महात्मा गाँधी ने भी 'राम राज्य' की स्थापना का स्वप्न देखा था।

भारत की लोक संस्कृति ही राममय है। यहाँ सभ्यता के हर उपादान में राम रमे हैं। कला, शिल्प, अभिनय, संगीत सभी में राम विद्यमान हैं। किसी संगीत के आलाप से अगर 'राम' शब्द हटा दिया जाय, तो वह निष्प्राण हो जाएगा। कोई भी माता-पिता और समाज अपनी सन्तान के नाम के साथ 'राम' सम्बोधित कर गर्व का अनुभव करता है। लोकगीतों में तो 'फलाने राम' कह कर गीत गाया जाना आम है।

भारतीय संस्कृति संस्कार प्रधान है और संस्कारों में राम, जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त ओत-प्रोत हैं। बालक जब जन्म लेता है, तब लोक में हर घर में राम जन्म लेते हैं। घर-घर में जो बधावा बजता है, जो सोहर गाये जाते हैं, वे राम के लिये गाये जाते हैं। अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, विवाह आदि सभी संस्कारों में लोक गीत में राम उपस्थित हो जाते हैं। विवाह में गालियाँ भी राम के नाम से गायी जाती हैं।

लोक में पुत्र-जन्म होते ही गाँव-घर की कुलवधुएँ, गाँव की तमाम महिलाएँ जुट जाती हैं और सोहर के लोक धुन में 'राम' मुखरित हो जाते हैं। जन्मोत्सव संस्कार से ही व्यक्ति के जीवन में राम कैसे उपस्थित हों जाते हैं, उसका एक उदाहरण देखिये –

जाहि दिन राम जनम लिहले,
धरती आनन्द भइली हो।

ए ललना बाजे लागल अवध बधावा,
महल उठे सोहर हो।

लोक में हर पिता पुत्र के रूप में राम की कामना करता है, किन्तु सम्बोधन में सभी राम ही हैं। एक लोक गीत में कहा गया है –

कवन राम के लाली दरवजवा
मणि के दीप बारें हो,
ललना कवन राम प्रेम सुन्दरिया
कि लोटन-पोटन करैं हो।

यहाँ राम ही पितामह हैं, वही पिता भी हैं, तो वही पुत्र में भी अवतरित होते हैं। यही तो राम के प्रति समर्पण का भाव है, '**सकल राम मय जान**' है, '**त्वमेव माता च पिता त्वमेव**' राम ही हैं।

राम कथा के मार्मिक प्रसंग को लोक ने ऐसे आत्मसात् किया है, जैसे उसका कोई परिजन उस कष्ट को भोग रहा हो। श्रीराम लक्ष्मण और सीता वनगमन कर रहे हैं। इधर पावस के बादल गगन में घिर रहे हैं, तब लोक में घर-घर वात्सल्य उमड़ पड़ता है और माताएँ मेघ से विनती करने लगती हैं –

मचियन बैठलि कौशिल्या रानी,
मेघ से अरजि करैं हों।
मेघऽ कदली वन जनि बरिसहु,
तीनों जना भींजि जइहें हो।
मोरे रामऽ के भींजे मुकुटवा,
त लक्ष्मण के पटुकवा नु हो,
मोरी सीता के सिर के सेनहुरवा
कि तीनों जना भीजि जइहें हो।

वन में राम का मुकुट भींज रहा है, लोक चिन्तित है, वह राम की रक्षा के लिए मेघ से विनय कर रहा है। वात्सल्य का यह रूप लोक में ही देखने को मिलता है।

लोक संस्कृति में राम ठीक वैसे ही हैं, जैसे लोक में लोग हैं। लोक अपने तरीके से राम को प्रस्तुत करता है, अपने अनुसार उनका चरित्र-चित्रण करता है और रामकथा के विभिन्न घटनाक्रमों का औचित्य सिद्ध करता है, पर राम के चरित्र पर आँच नहीं आने देता।

अयोध्या नरेश राम गर्भिणी सीता को निष्कासित करते हैं, किन्तु लोक मानस इस लांछन से राम को कैसे बचा लेता है –

लोक में ननद और भौजाई की नोंक-झोंक, एक दूसरे को नीचा दिखाने की प्रवृत्ति का प्रचलन आम है। इस सम्बन्ध में एक गीत है – रामजी की बहन उनसे सीताजी की शिकायत करती है, जिससे क्षुब्ध हो राम सीता का परित्याग करते हैं। कथा यूँ है कि श्रीराम की बहन सीताजी से बार-बार पूछ रही हैं कि भाभी आपने तो रावण को देखा है, वह दशानन कैसा दिखता था? ननद के बार-बार के हठ से झुक कर सीताजी ने अपना पतिव्रत धर्म मानते हुए रावण के स्वरूप का चित्रण शब्द में न कर के एक रेखाचित्र बना दिया। राम भगिनी उसी चित्र को रामजी को दिखला कर भड़काती है –

भइया जवने रावण राउर बैरी,
भवजी ओहि के दिहली उरेह।

अर्थात् सीता का चित्त तो अभी भी आपके शत्रु में लगा है। इसी परिवाद पर राम ने सीता का परित्याग किया। '**पिता जनक भूपाल मणि, श्वसुर भानु कुल भानु।**' उस सीता को राम ने निष्काषित कर वनवास भेज दिया। वाल्मीकि आश्रम में सीता प्रसव-वेदना से पीड़ित हैं, किन्तु वे मानिनी भी हैं। सीता की समस्त वेदना और मान इस संस्कार गीत में उमड़ पड़ता है और सीता के कष्ट को स्मरण कर श्रोता फफक उठता है –

राम अवरू लक्ष्मण भइया,
आरे एकली बहिनिया हइं हो।
ऐ जीव ! राम जी बइठले जेवनरवा,
बहिनी लइया लगवेली हो।
ए भइया भउजी के दऽ बनवसवा,
जिनि रवणा उरेहली हो।

बहिन की बात लग गई, राम ने सीता को निर्वासित कर दिया। सिय की दशा दयनीय है –

रोवली सीता देह छछन करी,
अवरू बिछन कई हो।
ए जीव! के मोरा अगवा पिछवा,
लटवा के खोले नु हो।

शेष भाग पृष्ठ २६१ पर

अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस विशेष

स्वस्थ तन में मन का योगदान

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

बच्चो, इस वर्ष जून के महीने में हम १०वाँ अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस मना रहे हैं। योग के विषय में हम पिछले वर्ष कुछ बातें कर चुके हैं। इसी क्रम में हम कुछ और बातों पर प्रकाश डालेंगे, क्योंकि योग पूरा-पूरा जीवन दर्शन है, जो कभी समाप्त नहीं होता। योग के बारे में जितना जानेंगे उतना कम ही लगता है। योग एक प्रकार से मन, वचन और कर्म का आध्यात्मिक अनुशासन है। उदाहरण के रूप में शरीर और मन तराजू के दो पलड़े की तरह होते हैं। दोनों पल्ला बराबर होगा, तभी ऊपर का काटा सीधा होगा। अर्थात् एक ओर शरीर और दूसरी ओर मन; दोनों स्वस्थ्य रहने पर ऊपर का काँटा सीधा होता है अर्थात् हमारा किया हुआ कार्य सही ढंग से होता है। चाहे वह ईश्वर-भक्ति हो या किसी भी प्रकार का काम हो।

स्वामीजी भी कहते थे यदि शरीर स्वस्थ न हो, तो मन के साथ संग्राम कैसे कर सकोगे ''तुम लोग जगत के पूर्ण विकास रूपी मनुष्य कहलाने योग्य रह गये हो।'' इससे हमें पता चलता है कि स्वामीजी भी स्वास्थ्य पर बल देते थे। नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) नियमित रूप से शरीर को सबल बनाने के लिये नवगोपाल बाबू के अखाड़े में जाया करते थे। नवगोपाल बाबू ने भी नरेन्द्र के उत्साह और कार्यक्षमता को देखकर अखाड़े की विधि-व्यवस्था का भार उनके एवं उनके मित्रों के हाथों में छोड़ दिया था। स्वामीजी बच्चों से कहते थे – ''दौड़-दौड़ कर फुटबॉल खेला करो, इससे शारीरिक स्वास्थ्य-लाभ के साथ-साथ आपसी एकता में भी बल मिलता है।''

तो आओ बच्चो, योग को हम बहुत सरलता से समझते हैं। योग का अर्थ होता है जोड़ना। यह संस्कृत शब्द से आया है। योग शरीर और मन को एक साथ जोड़ता है। यह हमारे शरीर को लचीला और मन को शक्तिशाली बनाता है। जो शारीरिक व्यायाम है, उसे आसन कहते हैं। जिसमें श्वसन की किया हो, उसे प्राणायाम कहते हैं। आसन और प्राणायाम को मिला देने से योग बनता है, जिससे हमारा पूरा शरीर नई ऊर्जा को प्राप्त करता है। जो भी नियमित रूप से योग का अभ्यास करता है, वह शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक जीवन को अनुशासित करता है। यह प्राचीन भारत की देन है। इसमें मुख्यत: तीन चीजें होती हैं – व्यायाम, श्वसन और ध्यान। योग किसी के भी द्वारा किसी भी उम्र में तथा कैसी भी शारीरिक अवस्था में किया जा सकता है। जो भी योग का अभ्यास नियमित रूप से करते हैं, उसे 'योगी' कहते हैं। मनुष्य की सारी गतिविधियों का संचालक है – उसका मन। यह परमात्मा की एक श्रेष्ठतम कृति है। शरीर और मन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। पहले मन बीमार होता है, तब शरीर में कोई रोग पैदा होता है। यदि मन को निराश, अशान्त, बीमार और परेशान न होने दिया जाये, तो शरीर में बीमारी के लक्षण अधिक समय टिक नहीं सकते। मानसिक विकारों के कारण ही अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। अत: उत्तम स्वास्थ्य-प्राप्ति के लिये मानसिक रूप से स्वस्थ रहना नितान्त आवश्यक है। इसलिए स्वस्थ शरीर ही आपका सबसे बड़ा धन होता है। इसके लिए आप कुछ महत्त्वपूर्ण आदतों को जीवन में सम्मिलित करें। योग के साथ-साथ सात्त्विक आहार जैसे – दूध, फल, सब्जी, अनाज, दालें आदि को अपने भोजन में शामिल करें। क्योंकि कहा जाता है ''जैसा खाये अन्न वैसा होवे मन''। साथ ही सुबह जल्दी उठें, अच्छी पुस्तकें पढ़ें, अच्छी संगीत सुनें, कार्य में व्यस्त रहें। प्रात: उषापान करें। रात में सोने से पहले अपने दिन भर के किये गये कार्यों की समीक्षा करें और सोने से दो घण्टे पूर्व मोबाईल, टी.वी., कम्प्यूटर, लेपटॉप (Blue Screen) का उपयोग बंद कर दें और समय से सोयें तथा खुश रहें।

तो बच्चो, इस तरह जीवन में योग और स्वस्थ दिनचर्या का पालन कर हम प्रसन्न रहकर दूसरों में भी प्रसन्नता बाँट सकते हैं। ○○○

रामगीता (४)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार हैं। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज हैं। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

दूसरा पक्ष है, नहीं भाई संसार है, संसार का अच्छा व्यवहार होना चाहिए, अच्छा निर्माण होना चाहिए। दोनों पक्ष आ गया। दक्ष पुत्रों को उत्पन्न करते हैं। उसी समय देवर्षि नारद आ गये। बहुत मीठा व्यंग्य है। क्या? रागी और विस्तार करनेवाले का सम्मान किया। वह तो करते ही हैं। गृहस्थ लोग साधुओं का सम्मान करते हुए दिखाई देते हैं। हाँ, एक ही चिन्ता बनी रहती है कि हमारे घर में कोई साधु न बन जाये। चाहिए तो उसको साधु, पर उनके अपने घर से नहीं, किसी और के घर से और वही दक्ष के घर में हुआ। उनके पुत्र नारदजी के पास जाकर बैठने लगे और महात्माजी उन्हें ज्ञान, वैराग्य और संसार की नश्वरता का उपदेश देने लगे। दक्ष के पुत्र संन्यासी बनकर जाने लगे, तो दक्ष को बड़ा क्रोध आया। मानो गृहस्थ तो साधु को उतना ही महत्त्व देना चाहता है कि चलो भई, बहुत सी फोटो ड्राईंग रूम में लटकी हुई है, तो एक साधु का भी फोटो लगी रहे, शोभा रहेगी, पर उससे आगे बढ़ने का साहस तो नहीं होगा। ऐसी स्थिति में बड़ी जटिल स्थिति आ गई। वह जटिल स्थिति यह थी। सचमुच उपदेश का आनन्द अलग रहता है, सुनने का आनन्द, मनोविलास और एक आनन्द होता है क्रियान्वित करने का। आप देखिए न, आप नाटक देखने जाते होंगे, तो आप कितनी बार नाटक में और सिनेमा में तालियाँ बजाते हैं ! क्यों बजाते हैं? अगर कोई खलनायक पिट रहा है, तो आप ताली बजा रहे हैं। इसका मनोविज्ञान क्या है? क्योंकि आप जानते हैं कि आप जीवन में कभी खलनायक को तो पीट नहीं पावेंगे, इसलिए चलो कम से कम नाटक में तो ताली पीटकर प्रसन्न हो लें। वहाँ तो यह दिखलाने कि हाँ, बुरे व्यक्ति को पिटते हुए देखकर हम प्रसन्न होते हैं। जब आप अच्छाई पर प्रसन्न होते हैं, तो वहाँ पर भी एक नाटकीय सुख है। मानो व्यक्ति के जीवन की जो विडम्बना है, वह दक्ष की मनोभूमि में है। नारदजी को स्वागत करके बैठाया गया, तो नारदजी को जो अच्छा लगेगा, वही तो उपदेश देंगे, किन्तु दक्ष को क्रोध आ गया। श्रीमद्भागवत में दोनों ओर का बड़ा तर्क-वितर्क है। दक्ष ने कहा महाराज, आपने मेरे पुत्रों को ऐसा उपदेश क्यों दिया? उन्होंने यही कहा कि मैंने जो कहा है, वह क्या शास्त्र के अनुकूल नहीं है? वेद के अनुकूल नहीं है? दक्ष पण्डित हैं। वे यह बात नहीं कह सकते थे कि शास्त्र के अनुकूल नहीं है। तब दक्ष ने दूसरा तर्क चुना। दक्ष ने कहा – आपने जो कुछ कहा है, वह शास्त्रसम्मत है, लेकिन आप यह तो विचार करके देखिए कि आप जो बात कह रहे हैं, वह क्या सचमुच कही जानी चाहिए।

वे दो पक्ष थे। एक पक्ष यह है कि अगर कीचड़ लग जाये, तो उसके बाद उपदेश दें कि उसको धोवें कैसे। दूसरा पक्ष यह है कि कीचड़ लगे और धोवें। इससे अच्छा है कि कीचड़ लगे ही न। मानो नारद का पक्ष था कि यह सृष्टि अगर मिथ्या है, तो इसमें फँसने की जरूरत क्या है। पर दक्ष ने बड़े पाण्डित्यपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया – देखिए, जिन विषयों की आपने इतनी निन्दा की है, वह निन्दा आपने भले ही की हो और वह निन्दा भले ही बुद्धि-संगत प्रतीत हुई हो, पर क्या आप जानते हैं कि इसका परिणाम क्या हो सकता है? क्या होगा? बोले, ये लोग आपके उपदेश से प्रभावित होकर घर छोड़कर चले गये। पर जिन विषयों की आपने निन्दा की है, उन विषयों का अनुभव तो उन्हें नहीं है और कहीं उनको विषयों की थोड़ी भी मिठास मिली, तो

फिर उसके आकर्षण से, उसकी लालसा से नहीं बच पाएँगे। तो पहले उचित यही है कि आप उन्हें वही उपदेश देते, जो गृहस्थ जीवन के अनुकूल था। आपको अभी वैराग्य का उपदेश नहीं देना चहिये। नारदजी ने कहा – ठीक है, पर यह अधिकारी-भेद की बात है। मैंने तुम्हारे पुत्रों को उस योग्य माना, इसलिये उन्हें ऐसा उपदेश दिया। यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति उसी क्रम से साधना के पथ पर चले। इसलिए मैंने जो कुछ कहा है, वह बिल्कुल उपयुक्त है।

यह एक ऐसा विषाद है, जो अनादि काल से अब तक समान रूप से चला आ रहा है। दक्ष केवल प्रतिभाशाली ही नहीं थे, अनेक सिद्धियाँ भी उन्हें प्राप्त थीं। उन्होंने कहा कि मैं आपको यही शाप देता हूँ कि आप दो घड़ी से अधिक कहीं नहीं टिकेंगे। बहुत बढ़िया व्यंग्य था। महात्माजी अधिक देर रुकेंगे, तो लोग उनसे अधिक उपदेश सुनेंगे। इसलिए आवें, तो थोड़ा स्वाद दे दें और बस दो घड़ी से अधिक नहीं रूकेंगे, नहीं बोलेंगे। यह सारा प्रसंग मनुष्य के मन का वास्तविक चित्र है। मनुष्य का मन जैसा होता है, उसकी ओर संकेत करता है। दक्ष तो प्रजापति हैं ही, उनके शाप में शक्ति है। उस शाप की शक्ति से नारद प्रभावित हुए। अब उस शाप के कारण नारदजी कहीं भी दो घड़ी से अधिक ठहर ही नहीं सकते, बस चलते ही रहते हैं। लेकिन उसका भी एक पक्ष है कि अब वे अधिक भ्रमण करते हैं, अधिक निरन्तर यात्रा करते हैं – **पर्यटन विविधान् लोकान्।** सदा चलते ही रहते हैं, तो संसार की दशा देखते हैं, लोगों का दुख देखते हैं और जाकर क्षीर सागर में भगवान श्रीमन्नारायण भगवान विष्णु को सुनाते हैं कि लोग कितने दुखी हैं। सत्यनारायण की कथा तो बहुत प्रचलित है और गृहस्थ जीवन में तो उसको बड़ा सम्मान प्राप्त है। कहा गया है – **पर दुख दुखी सो संत पुनीता।**

उनके उस भ्रमण का भी एक लाभ है। उस भ्रमण का लाभ यही है कि यदि वे निरन्तर एक ही स्थान पर रहते, तो कुछ लोगों को लाभ होता। लेकिन दो घड़ी में जिसका कल्याण होना है, उसका वे दो घड़ी में भी कर देते हैं। ऐसे उपाख्यान आते हैं, जब नारदजी ने थोड़े से ही समय में बहुत कुछ करके दिखा दिया। गणेशजी का प्रसंग, जयन्त का प्रसंग उसी की ओर संकेत करता है।

गणेशजी उस यात्रा के पथिक दिखाई देते हैं, जिसमें संसार के अधिकांश लोग सम्मिलित हैं। देवता तो सभी वन्दनीय हैं, पर वन्दनीय होते हुए भी प्रश्न यही था कि प्रथम पूजा किसकी हो? निर्णय कौन करे? भगवान शिव ने एक सूत्र दिया कि ब्रह्माण्ड की परिक्रमा करके जो सबसे पहले आ जाएगा, वह प्रथम पूज्य होगा। मानो श्रेष्ठ लोगों में पूजा कराने की होड़ तो होती ही है। कोई श्रेष्ठ होगा, तो कोई परम श्रेष्ठ होगा, परम विशिष्ट होगा। यात्रा प्रारम्भ हुई और उस यात्रा में सभी देवता अपने-अपने वाहन पर बैठकर यात्रा करते हैं। उन वाहनों की भी अपनी व्याख्या है। उस प्रसंग में गणेशजी जब चूहे पर बैठकर चलने लगे, तो देवताओं की स्त्रियों को बहुत हँसी आई। वे सोचने लगे कि सुनते थे कि गणेश बुद्धि के देवता हैं, पर कार्य इनका देखकर तो नहीं लगता कि ये बुद्धि के देवता हैं। क्यों? बोले बुद्धिमान होते तो गणित भी आती होती। इतना गणित कर लेते कि ब्रह्माण्ड कितना बड़ा है और इनके चूहे की गति कितनी है और वह चूहा कितनी देर में परिक्रमा कर पायेगा। वे अन्य देवताओं के वाहनों की गति का भी पता कर लेते। अगर गणित आता होता, तो ये व्यर्थ का परिश्रम नहीं करते।

यह एक पक्ष था, लेकिन गणेशजी की बुद्धिमत्ता बड़ी दूरगामी थी और वही सिद्ध हुई। जब सारे देवता परिक्रमा के लिए चल पड़ते हैं, तो देवर्षि नारद इसका आनन्द लेने के लिए चल पड़ते हैं। यद्यपि वे इस होड़ में नहीं है, पर आनन्द लेने के लिए चल रहे हैं। उलटी दिशा से कैसी यात्रा हो रही है, कैसी गति से चल रहे हैं? और जब भी कोई देवता दूर से नारदजी को आता देख लेता है, तो घबरा जाता है। अब ये बीच में ही रोककर यह कहने लगे कि थोड़ा-सा भगवान का संदेश और उपदेश सुनकर जाओ। जितनी देर हम इनका उपदेश सुनेंगे, उतनी देर में तो और देवता न जाने कितने आगे बढ़ जाएँगे। जो प्रथम पूजा चाहता है, जो गति चाहता है, उसको लगने लगता है कि सत्संग भी इसमें बाधक ही बनता है, सत्संग भी इसमें विरोध ही उत्पन्न करता है और नारदजी को अगर देखकर चले जाये, तो भी अनादर। एक पाखण्ड करते हैं ताकि नारद से बाद में कह सकें कि अच्छा, आप थे, मैंने तो नहीं देखा। दूसरी ओर देखने लगे। मानो छल-कपट से किसी तरह से आगे निकल जाना।

लेकिन गणेशजी महाराज तो बहुत पीछे हैं। गणेशजी ने जब देवर्षि नारद को आते हुए देखा, तो वे बहुत पहले ही अपने वाहन से उतर गये और देवर्षि को प्रणाम किया।

बड़े प्रसन्न हुए नारद। पर व्यंग्य में नारद ने कहा, अरे यह आपकी क्या बुद्धिमता है? आप इस होड़ में क्यों सम्मिलित हुए हैं? प्रथम पूजा के इस होड़ में सम्मिलित क्यों हुए हैं। गणेशजी ने बहुत सुन्दर उत्तर दिया। उन्होंने कहा कि अच्छा यह बताइए कि ये जितने लोग इस होड़ में सम्मिलित हुए हैं, उसमें से एक ही तो प्रथम पहुँचेगा। तब तो और सबको रुक जाना चाहिए। पहले ही प्रत्येक व्यक्ति यह मान ले कि इस होड़ में तो एक ही व्यक्ति सफल होगा। नहीं, नहीं, अन्ततोगत्वा इसका उद्देश्य क्या होगा? क्या केवल इतना ही है कि व्यक्ति कितनी दूर तक की यात्रा करके लौट आता है। ऐसा तो हो नहीं सकता। उन्होंने कहा कि इसका एक महान उद्देश्य यह हो गया कि जब हम ब्रह्माण्ड की यात्रा करें, तो तीर्थ पड़ेंगे, वहीं संतों का दर्शन होगा और प्रथम पूजा भले ही एक की हो, पर अन्य भी तो उसका लाभ ले सकते हैं। नारदजी समझ गये। उन्होंने मुस्कुराकर कहा, मेरी बात अगर मानें, तो मैं आपसे अनुरोध करूँ। आप राम-नाम लिखिए और उसकी परिक्रमा करके, लौटकर भगवान शंकर से निवेदन करिए कि मैंने विश्व-ब्रह्माण्ड की परिक्रमा कर ली। नारदजी की बात गणेशजी ने स्वीकार ली और भगवान शंकर ने उन्हीं के पक्ष में निर्णय दिया। उनको हृदय से लगा लिया।

आप इस पर दूसरी दृष्टि से विचार कीजिए। देवर्षि नारद की अन्य देवताओं ने उपेक्षा की, पर मान लीजिए कि देवता उन्हें देखकर प्रणाम भी करते, रुक भी जाते और नारदजी उनसे कह देते कि रामनाम लिखकर परिक्रमा करो, तो सुननेवाला देवता यह समझता कि ये तो हमारी दौड़ में बाधा उत्पन्न करने पर तुले हुए हैं। ये तो यही चाहते हैं कि हम पिछड़ जायें और हार जायें। दो अक्षर की परिक्रमा ब्रह्माण्ड की परिक्रमा कैसे हो जायेगी? हम इनके चक्कर में फँसेंगे, तो हम तो यहीं रह जाएँगे।

तो मानो सत्संग भी बहुत कम लोग कर पाते हैं और जो करते भी हैं, उनको निरन्तर एक ही वृत्ति बनी रहती है, उनकी दृष्टि अपने स्वार्थ की ओर, कामना की ओर रहती है और यह चिन्ता बनी रहती है कि इस सत्संग के द्वारा, इस उपदेश के द्वारा हम पिछड़ तो नहीं जाएँगे। आप देखते हैं, गणेशजी ऐसे महान हैं, जो जितने विवेक के देवता हैं, उतने ही विश्वास और आस्था उनके जीवन में दिखाई देते हैं। संत की वाणी को सुनना ही नहीं है, उस पर विश्वास करना है। विश्वास ही नहीं, उसके अनुकूल आचरण करना है, यह परिपूर्णता ही गणेशजी महाराज को प्रथम पूज्य बना देती है। जो नारदजी का थोड़ा-सा भी सत्संग कर लेता है, वह धन्य हो जाता है।

इतना होते हुए भी, एक दूसरा पक्ष है, जिसकी ओर संकेत किया गया। उसमें जो काम गीता के नाम से महाभारत में प्रसंग है, जिसका श्रद्धेय स्वामीजी महाराज ने आज प्रात:काल स्मरण दिलाया, उसमें यही बताया गया कि वह तो सब ठीक है, लेकिन स्वयं देवर्षि नारद जिस समय समाधि में बैठ गए, उस समय उस शाप की गति मिट गई।

सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी।
सहज बिमल मन लागि समाधी।। १/१२४/४

दो घड़ी वाला जो शाप है, उस समय उसकी गति अवरुद्ध हो गई। ध्यान का मुख्य तात्पर्य यह है कि ध्यान की स्थिति में अगर आप देश और काल से ऊपर नहीं उठेंगे, तो आपका ध्यान परिपूर्ण नहीं होगा। शाप तो देश और काल को लेकर है। भगवान का ध्यान देशकाल से ऊपर उठा देता है। परिणाम क्या हुआ? नारदजी समाधि में दो घड़ी कौन कहे, न जाने कितनी देर तक समाधि में बैठे रहे।

अब वह दूसरा पक्ष आया। नारद की समाधि से इन्द्र को बड़ी चिन्ता हो गई। इन्द्र को यह चिन्ता हो गई कि नारदजी इतनी साधना क्यों कर रहे हैं? इन्द्रपद के मूल में साधना है, पुण्य है, पर साधना और पुण्य का अन्तिम उद्देश्य उसके जीवन में स्वर्ग है। स्वर्ग में भी सबसे बड़ा पद इन्द्र का है। इन्द्र को लगा कि कहीं मेरा ही पद पाने के लिये तो यह प्रयत्न नहीं हो रहा है। ये बेचारे जो पदासीन होते हैं, उनकी यह चिन्ता बड़ी विकट होती है। जो व्यक्ति पद में रहता है, वह दूसरों को भी सदा भय और आशंका की दृष्टि से देखता है। उनका देखना स्वाभाविक भी है, क्योंकि अधिकांश की दृष्टि उस पद की ओर रहती है। लेकिन इन्द्र के मन में,

सुनासीर मन महुँ असि त्रासा।
चहत देवरिषि मम पुर बासा।।
जे कामी लोलुप जग माहीं।
कुटिल काक इव सबहि डेराहीं।। १/१२४/७

कौवे का स्वभाव होता है। कौवे को आप देने के लिये कुछ हाथ बढ़ायें, तो भागेगा। **(क्रमशः)**

श्रीरामकृष्ण-गीता (३५)

सातवाँ अध्याय

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

सप्तमोऽध्यायः

गतवन्तौ फलोद्यानमेकं द्वावेकदा नरौ।
पुमान् यस्तु तयोर्मध्ये विषय-बुद्धिमत्तरः।।१८।।
प्रविश्य स तदुद्यानं गणयितुं प्रचक्रमे।
कति तत्र रसालाश्च कति तेषु फलानि वा।।१९।।
किमे वोद्यानमूल्यं वा विचारणश्चकार ह।
आलापी संस्तयोरण्य उद्यानस्वामिना सह।।२०।
उपविश्य तरोर्मूले स तु प्रभोरनुज्ञया।
फलानुद्धृत्य चैकैकमारेभे भक्षितुं मुदा।।२१।।

– एक बार एक बगीचे में दो लोग भ्रमण करने गये थे। उन दोनों में जिसमें विषय-बुद्धि अधिक थी, वह उस उद्यान में प्रवेश कर सोचने लगा कि इसमें कितने आम हैं, किस पेड़ में कितने आम हैं, उद्यान का कितना मूल्य है, इत्यादि। दूसरा व्यक्ति उद्यान के स्वामी से वार्तालाप करने लगा और पेड़ से एक-एक आम तोड़कर खाने लगा।

कतरो बुद्धिमानत्र जक्षिह्युदरपूर्तये।
आम्र फलानि को लाभः पत्रगणनया भवेत्।।२२।।

– इसमें बुद्धिमान कौन है? आम खाओ, पेट भरेगा। केवल पत्ता गिनकर गणित लगाने से क्या लाभ होगा?

तत्रैवात्र नियुक्तास्ते सदा ज्ञानाभिमानिनः।
विचारेषु हि शास्त्राणां मीमांसातर्क युक्तिषु।।२३।।

– वैसे ही जो ज्ञानाभिमानी हैं, वे लोग सदा शास्त्र-चर्चा और तर्क करने में ही व्यस्त रहते हैं। **(क्रमशः)**

पृष्ठ २५६ का शेष भाग

वन-देवी सीता को ढांढस देती हैं। सीता – '**कुसवा ओढ़न कुस डासन वन फल भोजन हो।**' से समय व्यतीत करती हैं। पुत्र जन्म लेता है, तब अयोध्या सन्देश भेजती हैं। पर राम के प्रति मान है। वे दूत से कहती हैं –

पहिल लोचन राजा दशरथ,
दूसर कौशल्या रानी हो।
तीसरे लोचन लछुमन देवर,
रमइया जनि सुनसु हो।

दूत, तुम प्रथम सन्देश राजा दशरथ को तथा दूसरा सासु कौशल्या को देना। यह तीसरा पत्र मेरे देवर लक्ष्मण को देना, किन्तु ध्यान रखना कि राम यह सन्देश न जान पाएँ। उन्हें खुशी में सहभागी नहीं बनाना।

मिथिला, जहाँ जगदम्बा सीता अवतरित हुई हैं, वहाँ श्रीराम का एक अलग स्वरूप है। लोक राम को किस रूप में देखता है? एक चित्र देखिये –

सीताजी बहिनी हमार हो,
राम लागे पहुनवा।

क्या प्रेमिल भाव है? देखते ही बनता है। इसी भाव का विस्तार करते हुए नारियाँ राम से विनती करती हैं –

ये पहुना! एहि मिथिले में रहू ना!
जे सुख बा ससुरारी में, ऊ सुख बा कहूँ ना।
एहि मिथिले में रहू ना।

लोक संस्कृति में इस प्रकार राम अनेक रूपों में विद्यमान हैं, लोक नायक बने हुए हैं। जन्म से लेकर अंतिम यात्रा तक 'श्रीराम नाम सत्य है' के घोष के साथ चिर शान्ति प्रदान करते हैं। ○○○

नि:स्वार्थता : साध्य और साधन विमर्श

ब्रह्मचारी नरोत्तमचैतन्य

रामकृष्ण मिशन आश्रम, कानपुर (उत्तर प्रदेश)

अनादि काल से चली आ रही इस सृष्टि में सारे जीव अपने बन्धनों से मुक्त होना चाहते हैं। जाने-अनजाने वे अपने वास्तविक स्वरूप में वापस आने का प्रयास कर रहे हैं। अन्तत: सभी जीवात्माएँ विभिन्न प्रकार के अनुभवों को प्राप्त करते हुए अपने अन्तिम उद्देश्य को पाने में सफल होंगी। सभी प्रकार की योनियों में मनुष्य योनि ही इस संसार-बन्धन को काट सकती है। यह चेतना ही उसकी महान विलक्षणता है, क्योंकि दूसरी योनियों में कर्मफल के समाप्त होने पर पुन: मर्त्यलोक में वापस आना पड़ता है।

जन्म-जन्मान्तरों के संचित संस्कार ही मनुष्य की वर्तमान मनोदशा का निर्माण करते हैं। उसी के अनुसार वह मुक्ति-मार्ग में आगे बढ़ता है। 'भक्त' भगवान के स्वरूप में खो जाना चाहता है, 'योगी' आत्मा का परमात्मा से मिलन चाहता है, 'ज्ञानी' ब्रह्म और आत्मा की एकरूपता द्वारा इस अज्ञान को नष्ट कर अपने यथार्थ स्वरूप में स्थित होना चाहता है और 'कर्मयोगी' निष्काम कर्म द्वारा अपने चित्त को शुद्ध कर नि:स्वार्थता की उपलब्धि करना चाहता है।

स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में, 'तुम्हें यह स्मरण रखना चाहिए कि सभी योगों का ध्येय आत्मा की मुक्ति है और प्रत्येक योग समान रूप से उसी ध्येय की ओर ले जाता है। बुद्ध ने ध्यान से तथा ईसा ने प्रार्थना द्वारा जिस अवस्था की प्राप्ति की थी, मनुष्य केवल कर्म द्वारा भी उस अवस्था को प्राप्त कर सकता है। बुद्ध ज्ञानी थे और ईसा भक्त, पर वे दोनों एक ही लक्ष्य पर पहुँचे थे।''[१] प्रस्तुत लेख में हम यह विचार करेंगे कि एक कर्मयोगी निष्काम कर्म की पराकाष्ठा नि:स्वार्थता को कैसे प्राप्त करता है।

इस संसार में अवतरित महापुरुषों के जीवन में जो विलक्षण बात हम देखते हैं, वह है दृढ़ इच्छाशक्ति का विकास। अब प्रश्न उठता है कि इस दृढ़ इच्छाशक्ति का विकास उनमें कैसे हुआ? चरित्र से हुआ। चरित्र का निर्माण कैसे हुआ? उनके द्वारा किये गये कर्मों से हुआ। ये शारीरिक एवं मानसिक कर्म हमारे मन पर अपने संस्कार छोड़ जाते हैं। इन संस्कारों का समूह ही हमारा चरित्र है। यदि ये संस्कार अच्छे हों, तो हमारा चरित्र उन्नत होगा और यदि खराब हों, तो हमारा चरित्र अवनत होता जायेगा। अत: इस प्रकार हम देखते हैं कि ये कर्म ही हमारे बन्धन और मुक्ति के कारण बनते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं, 'कोई भी व्यक्ति एक क्षण के लिए भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता।[२] जब कर्म अनिवार्य है और चेतन या अचेतन रूप से हो ही रहा है, तो क्यों न इसके रहस्य को जान लिया जाये। इस कर्म का रहस्य है – शरीर, मन तथा इन्द्रियों की प्रत्येक चेष्टा में 'मैं और मेरा' के त्याग का सतत अभ्यास। यह 'मैं और मेरा' का सम्पूर्ण त्याग ही नि:स्वार्थता है। अब हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि कैसे एक कर्मयोगी साधन के रूप में इस नि:स्वार्थता की उपलब्धि का अभ्यास करता है।

नि:स्वार्थता : एक साधन

मन में यह प्रश्न आना स्वाभाविक है कि हम नि:स्वार्थ कर्म क्यों करें? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए हमें सर्वप्रथम स्वयं से यह पूछना पड़ेगा कि हमारा प्रत्येक कर्म स्वार्थपूर्ण या स्वयं के लिए या 'मैं और मेरा' की पुष्टि के लिए क्यों होता है? मनुष्य में निहित आत्मा के स्वरूप को श्रुति 'सत्यं ज्ञानम् अनन्तम्'[३] के रूप में संकेत करती है। जब आत्मा का स्वरूप अनन्त है, तो हम क्यों इसका बोध नहीं कर पाते?

वेदान्त कहता है, 'अज्ञान या माया के कारण।' इस अज्ञान-आवरण के कारण ही हम अपने अनन्त स्वरूप से विमुख होकर एक सीमित परिधि में उसे बाँधने की कोशिश करते हैं। जन्म-जन्मान्तरों से संस्कारजनित अभ्यास से यह इतना प्रबल हो चुका है कि हम अपने वास्तविक स्वरूप को ही भूल चुके हैं। अज्ञान के कारण इस स्वरूप की परिधि का सीमित होते जाना ही हमारे कर्मों के स्वार्थपूर्ण होने का हेतु है।

अत: हमारा उद्देश्य है कि प्रत्येक कर्म द्वारा हम इस क्षुद्र 'मैं और मेरा' की परिधि को बढ़ाते जायें। स्वामीजी कहते हैं,

'अपने को भूल जाओ, आस्तिक हो या नास्तिक, अज्ञेयवादी हो या वेदान्ती, ईसाई हो या मुसलमान, प्रत्येक के लिए यही प्रथम पाठ है और जो पाठ सबको स्पष्ट है, वह है तुच्छ अहं का उन्मूलन और वास्तविक आत्मा का विकास।'[४]

अभिप्राय यह है कि जब हम दूसरों के लिए नि:स्वार्थ भाव से कर्म करते हैं, तो हमारा 'मैं और मेरा' भाव टूटकर क्रमश: सर्वात्मभाव में परिणत होने लगता है; लेकिन यह प्रक्रिया एक-दो दिन, महीने या साल में पूरी नहीं हो सकती है। इसके लिए हमें अध्यवसायपूर्वक लगे रहना होगा।

स्वामीजी कहते हैं , '... हमें प्रारम्भ से ही आरम्भ करना पड़ेगा, जो कार्य हमारे सामने आयें, उन्हें हम हाथ में लें और शनै:-शनै: हम अपने को प्रतिदिन नि:स्वार्थ बनाने का प्रयत्न करें। हमें कर्म करते रहना चाहिए तथा यह पता लगाना चाहिए कि उस कार्य के पीछे हमारी प्रेरक शक्ति क्या है। ऐसा होने पर हम देखेंगे कि प्रारम्भ के वर्षों में प्राय: हमारे सभी कार्यों का हेतु स्वार्थपूर्ण रहता है, किन्तु धीरे-धीरे यह स्वार्थपरायणता अध्यवसाय से नष्ट हो जायेगी और अन्त में वह समय आयेगा, जब हम वास्तव में स्वार्थरहित होकर कार्य करने के योग्य हो सकेंगे।'[५]

नि:स्वार्थता के इस अभ्यास में हमें और एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु पर ध्यान देना होगा, वह है – अनासक्ति का अभ्यास। बिना अनासक्ति के कार्य करने का अर्थ है, पैरों में पड़ी बन्धन की बेड़ियों को बाँधते जाना और अनासक्त होकर कर्म करने का अर्थ है, उन्हें खोलते जाना। तब अनासक्ति का अभ्यास किस प्रकार किया जाये? आस्तिक तथा नास्तिक दोनों प्रकार के व्यक्तियों के लिए अनासक्ति के अभ्यास हेतु स्वामीजी दो मार्ग बताते हैं –

१. कर्म को कर्तव्य-भावना से प्रेरित होकर करना

२. कर्म को उपासना के रूप में रूपायित करना

वे कहते हैं, 'पहला उपाय उन लोगों के लिए है, जो न तो ईश्वर में विश्वास करते हैं और न किसी बाहरी सहायता में। वे अपने ही उपायों का प्रयोग कर सकते हैं, उन्हें अपनी ही इच्छा-शक्ति, मन:शक्ति एवं विवेक का अवलम्बन करके कहना होगा, ''मैं अनासक्त होऊँगा ही।'' जो ईश्वर पर विश्वास करते हैं, उनके लिए एक दूसरा मार्ग है, जो इसकी अपेक्षा बहुत सरल है। वे समस्त कर्मफलों को ईश्वर को अर्पित करके कर्म करते जाते हैं, इसलिए कर्मफल में कभी आसक्त नहीं होते। वे जो कुछ देखते हैं, अनुभव करते हैं, सुनते हैं अथवा करते हैं, वह सब भगवान के लिए ही होता है।'[६]

नि:स्वार्थता ही साध्य

इस प्रकार अनासक्ति के साथ-साथ निष्काम कर्म का धैर्य एवं अध्यवसायपूर्वक अभ्यास करने से एक स्थिति ऐसी आयेगी, जब साधक की अहंवृत्ति ('मैं' और 'मेरा' का भाव) अनन्त विस्तार को प्राप्त कर लेगी या उस सर्वशक्तिमान की अहंवृत्ति में लीन हो जायेगी अथवा जब ढूँढने से भी वह नहीं मिलेगी, तब वह मुक्ति प्राप्त कर लेगा। अहंवृत्ति के न रहने से साधक में कर्तापन का बोध ही नहीं रहेगा। जब कर्तापन का बोध नहीं है, तब कोई भी कर्म उसे बाँध नहीं सकता है। इसी स्थिति का वर्णन करते हुए भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं –

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते।।

''मैं कर्ता हूँ, जो इस प्रकार के अहंभाव से रहित है, जिसकी बुद्धि कर्मफल में आसक्त नहीं होती, वह इन समस्त लोकों की हत्या करके भी न तो किसी की हत्या करता है और न ही उसके पाप से बँधता है।''[७] वास्तव में 'अहंभाव का त्याग' हिन्दू धर्म के समस्त शास्त्रों का सार है। इसका पूरी तरह से लुप्त हो जाना ही नि:स्वार्थता को प्राप्त करना है।

इस स्थिति की व्याख्या करते हुए स्वामीजी कहते हैं, 'सारा श्रेष्ठ नीतिशास्त्र यही शिक्षा देता है कि सम्पूर्ण नि:स्वार्थपरता ही चरम लक्ष्य है। मान लो, किसी मनुष्य ने इस सम्पूर्ण नि:स्वार्थपरता को प्राप्त कर लिया, तो फिर उसकी क्या दशा हो जाती है? फिर वह अमुक-अमुक नामवाला पहले का क्षुद्र व्यक्ति नहीं रह जाता, वह अनन्त विस्तार को प्राप्त कर लेता है। फिर उसका पहले का वह क्षुद्र व्यक्तित्व सदा के लिए नष्ट हो जाता है, अब वह अनन्त स्वरूप हो जाता है और इस अनन्त विकास की प्राप्ति ही वास्तव में समस्त दार्शनिक एवं नैतिक शिक्षाओं का लक्ष्य है।''[८] ○○○

सन्दर्भ सूत्र : १. विवेकानन्द साहित्य, अद्वैत आश्रम (कोलकाता), संस्करण १९६३, खण्ड ३, पृ ३१ **२.** न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। गीता ३/५ **३.** तैत्तिरीय उपनिषद्। २/१ **४.** विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ८, पृ ५९ **५.** वही, खण्ड ३, पृ १० **६.** वही, खण्ड ३, पृ ७५ **७** गीता १८/१७ **८.** विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ३,पृ ८२

प्रश्नोपनिषद् (४६)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

षष्ठ: प्रश्न:

सोलह कलाओं वाले पुरुष का निवास-स्थान

अथ हैनं सुकेशा भारद्वाज: पप्रच्छ। भगवन्-हिरण्यनाभ: कौसल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत। षोडशकलं भारद्वाज पुरुषं वेत्थ तमहं कुमारमब्रवं नाहमिमं वेद यद्यहमिममवेदिषं कथं ते नावक्ष्यमिति समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुं स तूष्णीं रथमारुह्य प्रवव्राज। तं त्वा पृच्छामि क्वासौ पुरुष इति।।६/१।।

अन्वयार्थ – अथ ह (इसके बाद), एनम् (इन पिप्पलाद को), भारद्वाज: (भरद्वाज के पुत्र) सुकेशा (सुकेशा ने), पप्रच्छ (पूछा) – भगवन् (हे भगवन्), हिरण्यनाभ: (हिरण्यनाभ नामक) कौसल्य: (कोसलदेशीय) राजपुत्र: (राजकुमार ने), माम् उपेत्य (मेरे पास आकर), एतम् (यह), प्रश्नम् (प्रश्न) अपृच्छत (पूछा), भारद्वाज (हे भरद्वाज-पुत्र), षोडशकलम् (सोलह कलावाले) पुरुषम् (पुरुष को), वेत्थ (क्या आप जानते हैं?), अहम् (मैंने), तम् (उस) कुमारम् (राजकुमार को), अब्रुवम् (कहा), अहम् (मैं), इमम् (इस पुरुष को), न वेद (नहीं जानता हूँ); यदि (यदि), अहम् (मैं), इमम् (इसको) अवेदिषम् (जानता) (तो), कथम् (क्यों), ते (तुम्हें), न अवक्ष्यम् इति (नहीं बताता)? – इति (ऐसा कहा), य: अनृतम् अभिवदति (जो व्यक्ति मिथ्या बोलता है), एष: (वह) समूल: वै (निश्चित ही जड़-मूलसहित), परिशुष्यति (सूख जाता है), तस्मात् (इसलिए) अनृतम् वक्तुम् (झूठ बोलने में) न अर्हामि (मैं असमर्थ हूँ)। (मेरे इतना कहने पर) स: (वह राजकुमार), तूष्णीम् (चुपचाप) रथम् आरुह्य (रथ पर चढ़कर) प्रवव्राज (चला गया)। तम् (उसे जानने के हेतु) त्वा (आपसे) पृच्छामि (पूछ रहा हूँ), असौ पुरुष: (वह पुरुष) क्व (कहाँ रहता है)? इति।।१।।

भावार्थ – इसके बाद, इन पिप्पलाद के समक्ष भरद्वाज के पुत्र सुकेशा ने अपना प्रश्न रखते हुए कहा – हे भगवन्, हिरण्यनाभ नामक कोसलदेशीय राजकुमार ने मेरे पास आकर पूछा था – हे भरद्वाज-पुत्र, क्या आप सोलह कलावाले पुरुष को जानते हैं? मैंने उस राजकुमार को कहा – मैं इस पुरुष को नहीं जानता हूँ; यदि मैं इसको जानता, तो तुम्हें क्यों नहीं बताता? जो व्यक्ति मिथ्या बोलता है, वह निश्चित ही जड़-मूलसहित सूख जाता है, इसलिए झूठ बोलने में मैं असमर्थ हूँ। (मेरे इतना कहने पर) वह राजकुमार चुपचाप रथ पर चढ़कर चला गया। उसी को जानने हेतु मैं आपसे पूछ रहा हूँ – वह पुरुष कहाँ रहता है? – इतना ही।।६/१।।

भाष्य – <u>अथ</u> <u>हैनं</u> <u>सुकेशा</u> <u>भारद्वाज</u>: <u>पप्रच्छ</u>। समस्तं जगत्-कारण-लक्षणं सह विज्ञानात्मा परस्मिन् अक्षरे सुषुप्ति-काले सम्प्रतिष्ठते इति उक्तम्।

भाष्यार्थ – इसके बाद भरद्वाज कुल के सुकेशा ने (पिप्पलाद ऋषि से) पूछा – ऐसा कहा गया है कि सुषुप्ति-काल के समय कारण (उपादान, प्रकृति, मिट्टी) तथा कार्य (विकृति, घड़ा आदि) के रूप में समस्त जगत् चैतन्यरूप जीवात्मा सहित परम् अक्षर में स्थित हो जाता है। **(क्रमश:)**

हमारे ठाकुर 'पाप' शब्द सहन नहीं कर पाते थे। 'मैं पापी हूँ' वे ऐसा विचार करने से सबको मना करते थे। बल्कि वे यह सोचने की सलाह दिया करते थे कि जब मैं उनका नाम ले रहा हूँ, फिर मुझे कैसी चिन्ता और कैसा भय – 'अरे, जिसकी माँ स्वयं ब्रह्ममयी हैं, वह भला किससे भयभीत होगा?'

– स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज

(साधकों के नाम पत्र, पृ. ७१)

विक्षुब्ध मन पर अच्छी आदतों एवं सद्गुणों का प्रभाव

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

युवाओं! हम सब जानते हैं कि जल को नीचे की ओर बहने में श्रम करने की आवश्यकता नहीं होती, बल्कि ढलान में जल का वेग और भी प्रखर हो जाता है, परन्तु जल को विपरीत दिशा में अर्थात् ऊपर की ओर ले जाने के लिए अधिक श्रम की आवश्यकता होती है। ठीक उसी प्रकार, जो आदतें हमारे तन और मन को अच्छी लगती हैं, अर्थात् जो आदतें हमें निम्नगामी बनाती हैं, उनकी लत स्वयं लग जाती हैं, लेकिन मन को ऊर्ध्वगामी बनाने वाली आदतों को अपनाने के लिए विवेकपूर्वक प्रयत्न करना पड़ता है।

वर्तमान जीवन में मानसिक रूप से अशान्त और विक्षुब्ध युवा मन को शान्ति और आनन्ददायक जीवन-यापन के लिए अच्छी आदतों एवं सद्गुणों को विकसित करना चाहिए। यदि इन्हें विकसित करने का प्रयास करें, तो जीवन सुख, समृद्धि तथा आनन्द से परिपूर्ण होगा। हम यहाँ पर कुछ अच्छी आदतों का वर्णन कर रहे हैं, जिनको जीवन में अंगीकार करके युवा स्वयं को उच्च धरातल पर आरूढ़ कर सकते हैं।

स्वाध्याय – क्या आप जानते हैं कि ज्ञान किसे कहते हैं? जो हमें उचित और अनुचित के बीच अन्तर बताता है, उसे ज्ञान कहते हैं। ज्ञान हमें शिक्षा प्रदान करता है कि किन कार्यों, आदतों से हमारा मंगल होता है और किनसे अमंगल। स्वाध्याय से ज्ञान प्राप्त होता है। स्वाध्याय अर्थात् अध्ययन से हम कुछ अच्छा, नया सीखने का प्रयास करते हैं। उपन्यास और कहानियाँ पढ़ने की रुचि को स्वाध्याय या अध्ययन नहीं कहते हैं। स्वाध्याय के द्वारा आत्मसंस्कार विकसित होता है।

स्वामी विवेकानन्द स्वाध्याय प्रेमी थे। कहा जाता है कि उनको अध्ययन का इतना व्यसन था कि वे बड़े से बड़े ग्रन्थ के पृष्ठ की पहली और अन्तिम पंक्तियों को बहुत ही कम समय में पढ़कर पूरे पृष्ठ के मर्म को समझ लेते थे। स्वामी विवेकानन्द ने जुलाई १८९३ में अमेरिका के अनिस्क्काम नामक गाँव में कहा था कि जब ब्रिटिश लोग भारत छोड़कर चले जाएँगे, भारत को चीनियों द्वारा आक्रमण का भय रहेगा, और यह भी कहा था कि आने वाले काल में रूस या चीन में कुछ घटनाएँ होंगी, जिनसे विश्व में नवीन युग का प्रारम्भ होगा। कुछ लोगों ने उनसे पूछा कि क्या आप भविष्यद्रष्टा हैं? तब स्वामीजी ने उत्तर में कहा – 'मैं भविष्यद्रष्टा नहीं, इतिहासद्रष्टा हूँ।' अर्थात् स्वामीजी को इतिहासद्रष्टा होने की दृष्टि इतिहास के स्वाध्याय से मिली थी। अत: आप जान गये होंगे कि स्वाध्याय – अध्ययन का कितना महत्त्व है!

युवा मन ही नहीं, बल्कि प्रौढ़, सेवानिवृत्त व्यक्ति भी अपना समय बीताने में कष्ट अनुभव करते हैं, साथियों के अभाव में उनको अकेलापन सताता है, परन्तु चाहे युवा हो या प्रौढ़, यदि वे स्वाध्याय की आदत विकसित करने का प्रयास कर लें, तो उनमें मनोबल का विकास होगा और अध्यवसाय के प्रति रुचि उत्पन्न होगी। स्वाध्याय हतोत्साहित युवा के लिए एक रामबाण औषधि है। स्वाध्याय युवा मन में प्रतिकूल स्थिति का सामना करने का उत्साह पैदा करता है। आजकल युवा नशे के चस्के में स्वयं को संलिप्त कर रहे हैं, जो समाज के लिए एक चिन्ता का विषय बन गया है। अत: युवाओं के लिए यह सन्देश है कि यदि जीवन में कोई चस्का लगाना ही है, तो ऐसा चस्का लगाये जिससे जीवन की सार्थकता का ज्ञान हो जाए और स्वाध्याय – अध्ययन ही वह चस्का, आदत, लत है, जिसको अंगीकार करके युवाओं को न तो जीवन में साथियों का अभाव खलेगा और न ही पथभ्रष्ट हो पाएँगे।

समय की पाबन्दी – समय की पाबन्दी हमारे जीवन में अत्यावश्यक है, क्योंकि इसके द्वारा हम जीवन के कार्यों को समय के द्वारा नियंत्रित करके अल्प समय में कार्य करने की क्षमता पैदा कर सकते हैं। समय की पाबन्दी आलस्य और जड़ता को दूर कर प्रखर बुद्धि का विकास करती है। समय पर कार्य न करने से हम दीर्घसूत्री हो जाते हैं। वाटरलू युद्ध में एक मिनट विलम्ब से पहुँचने के कारण नेपोलियन

पराजित हो गया। युवाओं को अपने जीवन का मूल्यांकन करने के लिए समय की पाबन्दी का अभ्यास करना चाहिए। समय की पाबन्दी से मन अधिक एकाग्र हो जाता है, मन का केन्द्रीकरण होता है, जो युवा मन में निहित असीम सम्भावनाओं को अभिव्यक्त करता है।

आलस्य से मुक्ति – आलस्य से व्यक्ति अकर्मण्य होता है। अकर्मण्य से स्वार्थी और लोभी होता है। जो व्यक्ति स्वार्थी होता है, वह मानवीय मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध नहीं हो सकता है। जो मानवीय मूल्यों के प्रति कटिबद्ध नहीं होता, वह चरित्रवान् नहीं हो सकता, क्योंकि चरित्रवान् का अर्थ है मानवीय मूल्यों, जैसे सहानुभूति, पारस्परिक सहयोग, करुणा इत्यादि के प्रति दृढ़प्रतिज्ञ होना।

जहाँ तक युवाओं का प्रश्न है, जो पढ़ना टालता रहता है, उसकी पढ़ाई में बुरी स्थिति होती है। जब कोई व्यक्ति लगातार अपने विभिन्न दायित्वों को कर्तव्यनिष्ठा और समय पर पूरा करने में व्यस्त रहता है, उसका प्रदर्शन अच्छा रहता है, और उसे मन को बेकार या हानिकारक विचारों से प्रभावित होने का बहुत कम अवसर मिलता है। इस प्रकार, आलस्य को त्याग कर उत्साह से कार्य करना हर किसी के हित में है।

बहुत-से लोग कार्यों को लगन और तत्परता से नहीं करते हैं, बल्कि वे कोई न कोई बहाने बना लेते हैं और कहते हैं कि वे निर्धारित समय पर कार्य निष्पादित करने की स्थिति में नहीं थे। कोई भी नियोक्ता किसी अकर्मण्य कर्मचारी से प्रसन्न नहीं होता है। युवाओं, दृढ़ इच्छाशक्ति के द्वारा आलस्य पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। दृढ़ इच्छाशक्ति आत्मविश्वास से विकसित होती है। आत्मविश्वास बढ़ाने के लिए अनुशासन का पालन करना अति आवश्यक है।

सहनशीलता – प्राय: हमें क्रोध तब आता है, जब कोई हमारे प्रति अप्रिय शब्द बोलता है, या जब कोई हमारे प्रति प्रतिकूल स्थिति उत्पन्न करता है, तब हम उससे प्रतिशोध लेने की ठान लेते हैं। यदि कोई बलवान् है, तो वह सीधे प्रतिक्रिया करता है। जो बलवान् नहीं है, वह व्यक्ति धूर्ततापूर्वक प्रतिशोध लेने की योजना बनाता है। यह महान् व्यक्ति का आचरण नहीं हो सकता है। यदि आप सामना करने की स्थिति में हो, तो भी आपको आपके विरुद्ध अनुचित व्यवहार करनेवाले को क्षमा करना चाहिए। मनुष्य को द्वेष नहीं करना चाहिए। रामायण में हम पढ़ते हैं, दुष्ट प्रवृत्ति के लोगों द्वारा भगवान् श्रीराम के विरुद्ध अनुचित व्यवहार किये जाने पर भी भगवान् राम ने अपनी सहनशीलता, आत्मसंयम के कारण प्रतिशोध लेने की भावना नहीं रखी, बल्कि जो उनके प्रति एक भी अच्छा कार्य करता, उससे वे प्रसन्न हो जाते।

असहिष्णु और क्रोधित होने से क्या लाभ? ऐसा करने से व्यक्ति अपनी मानसिक शान्ति ही खो देता है। मान लीजिए कि किसी व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति को अपमानित किया या उसकी निन्दा की। वह खिन्न हो जाता है। हार किसकी हुई? क्रोध एक कृतघ्न इकाई की तरह है। जो क्रोध को स्थान देता है, क्रोध उसी को जलाता है। क्रोधित होने के बजाय, तिरस्कृत या निन्दित व्यक्ति अच्छी तरह से विश्लेषण कर सकता है कि क्या वास्तव में उसमें कोई कमी है। यदि ऐसा है, तो वह उस व्यक्तिगत त्रुटि का समाधान कर सकता है, और उसे तो उस व्यक्ति का आभारी होना चाहिए, जिसने त्रुटि को उसके संज्ञान में लाया।

बुरा न मानना – जो लोग निपुण या सफल नहीं होते, वे लोग अपनी कमियों को छिपाने के लिए सफल लोगों की या तो निन्दा करते हैं, या उनमें दोष निकालते हैं। मूलत: निन्दा करना, व्यंग करना रचनात्मक नहीं होता है। यह एक बुरी सोच है, क्योंकि संकीर्ण भाव वाले लोग सोचते हैं, 'यह मेरा अपना है।' परन्तु व्यापक सोच रखने वालों के लिए पूरा विश्व एक परिवार है। हमें दूसरों के अच्छे गुणों की सराहना करनी चाहिए, न कि दोष देखने चाहिए। दूसरों की समृद्धि उस व्यक्ति के मन को कैसे व्यथित कर सकती है, जो हर किसी को अपना मानता है? वास्तव में, ऐसा रवैया ईर्ष्या आदि को समाप्त करके मानसिक शान्ति प्रदान करता है। परन्तु जो दूसरों को आत्मीय के रूप में नहीं देखते हैं, वे मानसिक शान्ति में बाधा डालते हैं।

शुभता – जब हम कुछ लोगों से मिलते हैं, तो हम देखते हैं कि उनके शब्द और मुख के भाव अच्छे नहीं होते। यह अवांछनीय है। हमें ऐसा बोलना और आचरण करना चाहिए जो सुखद हो। उदाहरण के लिए, किसी बुजुर्ग या महान व्यक्ति को देखकर अशिष्टता से बैठिए कहने की बजाय विनम्रता से सीट देकर 'बैठने' के लिए आमंत्रित

शेष भाग पृष्ठ संख्या २७२ पर

काव्य-सरिता

वरदान दे माँ सारदे

डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी'

शिव कल्पना के खोल सारे द्वार हे माँ सारदे।
मन की गुहा के तिमिर-रिपु संहार हे माँ सारदे।।
मन-प्राण को दे चारुता, सुविचार दे माँ सारदे।
तन में नवल स्फूर्ति का संचार दे माँ सारदे।।
चित्त को अचंचल कर मेरे, विस्तार दे माँ सारदे।
मायाभ्रमित संसार से निस्तार दे माँ सारदे।।
कर दिव्य मेरे तन-वदन, सुख-सार दे माँ सारदे।
मम कंठ को संगीत की झंकार दे माँ सारदे।।
नयनों को दे नव दृष्टि और तारुण्य दे माँ सारदे।
हृत-कंज में शुचि गंध दे, कारुण्य दे माँ सारदे।।।
मंजुल सुमंगल ज्ञान का शुभ दान दे माँ सारदे।
आनन्द का, उत्कर्ष का, वरदान दे माँ सारदे।।

तुम ही प्रभु सर्वस्व हमारे

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

तुम ही प्रभु सर्वस्व हमारे, तुम ही जीवन प्राणाधार।
तुम बिन नहीं हमारा कोई, तुम बिन सूना सब संसार।।
माता-पिता-बन्धु सब तुम ही, तुम ही अक्षय सुख-भंडार।
तुम ही प्रणव तत्त्व के बोधक, महिमा तेरी अपरम्पार।।
तुम ही कल्पवृक्ष भक्तों के, तुम ही हरते विषय-विकार।
यथायोग्य सबको देते हो, हरते हो सबका दुखभार।।
तुम ही मोक्षतत्त्व के दाता, तुम ही करते कृपा अपार।
सकल दोष को तजकर तुम प्रभु, करते हो भवसागर पार।।
सभी भाँति सुखदायक तुम हो, खड़ा हुआ हूँ तेरे द्वार।
अपने कृपाक्षेत्र में रख लो, कर दो प्रभु मेरा उद्धार।।

पृष्ठ २४३ का शेष भाग

सन् १९५८ में उन्हें मुम्बई से अद्वैत आश्रम, कलकत्ता में स्थानान्तरित किया गया। अद्वैत आश्रम के मायावती और कलकत्ता केन्द्रों में उन्होंने १८ वर्षों तक दीर्घ सेवा की। स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रारम्भ किये गये 'प्रबुद्ध भारत' अंग्रेजी पत्रिका के कुछ समय तक वे सह-सम्पादक भी रहे। उन्होंने अद्वैत आश्रम के प्रकाशनों के स्तर में अभूतपूर्व सुधार किया।

सन् १९७६ में उन्हें बेलूड़ मठ के पास रामकृष्ण मिशन सारदापीठ शैक्षणिक संस्थान का सचिव नियुक्त किया गया। १५ वर्षों तक के दीर्घ कार्यकाल में उन्होंने यहाँ शैक्षणिक और समाज-कल्याण का अद्भुत कार्य किया। सन् १९७८ में महाराज ने अपने संन्यासी सहयोगियों के साथ पश्चिम बंगाल में आये भीषण बाढ़ में राहत-कार्य किया। सारदापीठ से उन्हें दिसम्बर, १९९१ में रामकृष्ण मठ, मद्रास का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। वर्तमान भव्य श्रीरामकृष्ण मन्दिर का निर्माण उनके ही कार्यकाल में आरम्भ हुआ था।

सन् १९८३ में उन्हें रामकृष्ण मठ तथा रामकृष्ण मिशन का न्यासी चुना गया। अप्रैल, १९९५ में वे रामकृष्ण संघ के मुख्यालय में सह-महासचिव के पद पर नियुक्त हुए और करीब दो वर्षों बाद रामकृष्ण मठ तथा रामकृष्ण मिशन के महासचिव बने। विश्वव्यापी रामकृष्ण मठ और मिशन के वे १० वर्षों तक महासचिव रहे। उन्होंने पूरे विश्व में श्रीरामकृष्ण-भावधारा के प्रचार-प्रसार के आन्दोलन का नेतृत्व किया। मई २००७ में वे रामकृष्ण संघ के उपाध्यक्ष बने। एक दशक तक वे रामकृष्ण संघ के उपाध्यक्ष रहे। १७ जुलाई, २०१७ को वे रामकृष्ण मठ तथा रामकृष्ण मिशन के सोलहवें परमाध्यक्ष चुने गये।

महासचिव, उपाध्यक्ष और परमाध्यक्ष के कार्य-काल में महाराज ने भारत तथा विश्व में रामकृष्ण संघ के विभिन्न आश्रमों और भावधारा के आश्रमों की यात्रा कर श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदादेवी, स्वामी विवेकानन्द तथा वेन्दात के संदेशों का विस्तृत प्रचार-प्रसार किया। उन्होंने हजारों भक्तों को मंत्रदीक्षा प्रदान कर शान्ति और मुक्ति का मार्गदर्शन किया।

पूज्य महाराजजी उत्साही अध्येता और गहन चिन्तक थे। उन्होंने रामकृष्ण संघ से प्रकाशित पत्रिकाओं में कई विद्वत्तापूर्ण लेख भी लिखे। उनके लेखों के संग्रह की कुछ पुस्तकें – अँग्रेजी में 'म्यूजिंगस् आफ ए मोन्क' और बंगला में 'स्मृति-स्मरण-अनुध्यान' और 'चिन्तन-मनन-अनुशीलन' भी प्रकाशित हुई हैं। ○○○

सबकी श्रीमाँ सारदा

स्वामी चेतनानन्द, अमेरिका

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज वेदान्त सोसाइटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। विवेक ज्योति के पाठकों के लिये उनके अँगेजी निबन्ध का हिन्दी अनुवाद भोपाल के लक्ष्मीनारायण इन्दुरिया ने किया है।)

पागलों और विक्षिप्तों की माँ

आध्यात्मिक जीवन के लिए मानसिक सन्तुलन अत्यन्त आवश्यक है। माँ सारदा ने अपने शिष्यों को मस्तिष्क और पेट को शान्त बनाए रखने के लिये परामर्श दिया, क्योंकि जप और ध्यान करने के लिए यह अत्यावश्यक है। जो लोग सिर दर्द या पेट दर्द से पीड़ित हैं, वे अपना मन ईश्वर पर केन्द्रित नहीं कर सकते। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं, ''मन के समभाव को योग कहते हैं।'' माँ ने सभी प्रकार के लोगों को आकर्षित किया, कुछ समझदार थे, तो कुछ विक्षिप्त। समझदार और विक्षिप्त के बीच का अन्तर यह है कि समझदार व्यक्ति का उसकी भावनाओं पर नियन्त्रण होता है, जबकि विक्षिप्त व्यक्ति का उसकी भावनाओं पर कोई नियन्त्रण नहीं होता। यह अत्यन्त आश्चर्यजनक है, माँ अपने शिष्यों, भक्तों और सम्बन्धियों के पागलपन और विक्षिप्तता को अपने असीम धैर्य और दृढ़ता, प्रेम और क्षमा के द्वारा सहन कर लेती थीं। आपसी सम्बन्धों को विकसित करने और दया तथा उदार दृष्टिकोण के साथ परिस्थितियों से समायोजन करने की योग्यता का विकास करने में, निम्नलिखित कहानियाँ हमें प्रेरित करेंगी।

एक दिन उनसे विदा लेते हुए एक महिला ने माँ के पैर के अँगूठे को काट लिया। माँ जोरों से चीख पड़ीं – ''हे भगवान ! यह कैसी भक्ति है? तुम यदि मेरा चरण स्पर्श करना चाहती हो, तो वैसा क्यों नहीं करती? अँगूठे को क्यों काटना?''

महिला ने कहा – ''मैं चाहती थी, आप मुझे याद रखें।'' माँ ने उत्तर दिया – 'निस्सन्देह !' मैंने भक्त को स्मरण करने का ऐसा नया उपाय इसके पूर्व कभी नहीं देखा था।''

एक अन्य समय एक भक्त ने प्रणाम करते समय माँ के पैर की छोटी ऊँगली में इतने जोर से माथा पटका कि माँ दर्द से कराह उठीं। जब उपस्थित भक्तों ने इस लज्जाजनक व्यवहार का कारण पूछा, तब उसने उत्तर दिया – ''मैंने जानबूझकर उन्हें प्रणाम करते समय कष्ट पहुँचाया, जिससे जब तक पीड़ा रहेगी, वे मेरा स्मरण करेंगी।''

माँ सारदा के भाइयों के बीच पारिवारिक सम्पत्ति बँटवारे को लेकर स्वामी सारदानन्द वर्ष १९०९ में जयरामबाटी आए और वहीं थे। एक युवक माँ के दर्शन करना चाहता था, अत: स्वामी सारदानन्द ने अपने शिष्य ब्रह्मचारी ज्ञानानन्द (बाद में स्वामी भूमानन्द) को उसे माँ के पास लेकर जाने को कहा। उसने माँ को झुककर प्रणाम किया, जो बरामदे में खड़ी थीं और वह उनके पैर को खींचने लगा, जिससे माँ के पैर उसके छाती को स्पर्श कर ले। संयोग से माँ अपनी झोपड़ी के खम्भे को पकड़कर खड़ी थीं, अन्यथा वे नीचे गिर जातीं। ब्रह्मचारी ज्ञानानन्द ने तत्काल उस पागल के हाथ को पकड़ लिया और उसे बाहर ले गए। जब स्वामी सारदानन्द को इस विचित्र घटना के बारे में ज्ञात हुआ, तब उन्होंने कहा – ''माँ जब खड़ी रहती थीं, तब स्वामी योगानन्द भी माँ को प्रणाम नहीं करते थे। जब माँ वहाँ से हटती थीं, तब वे उस स्थान की धूल उठाकर अपने सिर में लगा लेते थे।''

माँ सारदा के पास तर्कहीन याचनाओं का कोई अन्त नहीं था, फिर भी वे अपने भक्तों की इच्छाओं की नि:संकोच पूर्ति करती थीं। जयरामबाटी में एक आदमी उनके पास आया और बोला कि तब तक वह पानी नहीं पीएगा, जब तक वह माँ के चरणों की पूजा न कर ले। माँ सारदा रसोई में काम कर रही थीं। उन्होंने अपना काम छोड़ा और बरामदे में एक कम ऊँचाईवाली चौकी पर खड़ी हो गईं, जिससे भक्त उनके चरणों पर पुष्प अर्पित कर सके। उसके बाद वे शीघ्रतापूर्वक भक्तों का भोजन बनाने के लिए रसोई में लौट गईं।

उमेश दत्त नाम का एक भक्त, माँ का चावल प्रसाद चाह रहा था, जिसे वह धूप में सुखाकर, तीन दिन बाद अपने साथ घर ले जा चाहता था। माँ ने थाली में अपना प्रसाद दिया और बोलीं, इसे देखो, जिससे गायें इसे खा न सकें। भक्त ने चावल प्रसाद की थाली को धूप में सूखने के लिए माँ के कमरे के सामने रख दिया और बोला कि वह कमरे से शीघ्र आ रहा है। वह धूम्रपान करने अतिथिगृह गया और भूल गया कि चावल सुखाकर आया है और सो गया। झपकी लेकर जब वह तीन बजे उठा, तो उसे चावल का स्मरण हुआ, वह घर गया और देखा कि माँ वहाँ बैठी हैं। माँ ने उससे कहा – ''बेटा, मैं यहाँ बैठी हूँ, ताकि गायें इस चावल को खा न लें।'' उसने लज्जित होकर क्षमा-याचना की – ''माँ मुझे अत्यन्त दुख है कि आज आपने विश्राम नहीं किया।''

एक दिन एक भक्त ने माँ के पैरों को पकड़ लिया और बोला – ''माँ वचन दीजिए, मेरी मृत्यु के समय आप मुझे दर्शन देंगी।''

माँ ने उत्तर दिया – ''मैं ठाकुर से प्रार्थना करूँगी, जिससे तुम्हें उनका दर्शन हो सकेगा।'' जब भक्त ने किसी अन्य विकल्प को स्वीकार नहीं किया, तब माँ बोलीं – ''ठीक है बेटा, वैसा ही होगा।''

एक दिन माँ जयरामबाटी में बरामदे पर चटाई में बैठी हुई थीं। जब ब्रह्मचारी बरदा आए, माँ ने रोष व्यक्त करते हुए कहा – ''तुम लड़के लोग काम से यहाँ-वहाँ चले जाते हो और मेरी देख-रेख के लिए यहाँ कोई नहीं रहता। एक वृद्ध आदमी अमूक के साथ आया। जब मैंने उसे देखा, मैं कमरे के भीतर चली गई और अपने खाट पर बैठ गई। वह मेरे चरणों की धूलि लेने के लिए आतुर था, मैंने उसे मना किया। उसने हठपूर्वक मेरे पैरों की धूलि ले ली। उस समय से मेरे पैरों में जलन हो रही है, साथ ही पेट में जोरों से दर्द हो रहा है। मैंने चार बार अपने पैरों को धो लिया है, फिर भी वह जलन हो रही है। यदि तुम यहाँ होते, तो मैं उसे रोकने के लिए तुम्हें संकेत दे देती। कलकत्ता में मेरे पास आनेवालों के प्रति वे लोग कठोर हैं। मेरे पास सभी प्रकार के लोग आते हैं। तुम लोग अभी छोटे हो, अत: तुम लोग उन लोगों के स्वभाव को नहीं समझ पाते।''

माँ सारदा से भक्त प्राय: अनुचित याचनाएँ करते थे। कोई उनसे ईश्वर दर्शन या कोई मुक्ति की माँग करता। माँ सदैव उन लोगों के अशान्त मन को शान्त करने में सफल होती थीं। एक बार उद्‌बोधन भवन में माँ ने अपनी नित्यपूजा का समापन किया, उसी समय एक अपरिचित भक्त माँ की चरणपूजा के लिए कुछ पुष्प लेकर आया। अपरिचित को देखकर अपनी आदत के अनुसार माँ एक चादर से अपने को ढँककर अपने पैरों को लटका के खाट पर बैठ गईं। उस व्यक्ति ने बड़ी विनम्रता से घुटनों पर बैठकर माँ के चरणों में पुष्प अर्पित किया और प्राणायाम करने लगा, मूर्ति के सामने जो अन्य अनुष्ठान करते हैं, वह करने लगा। सभी लोग अपना काम करने में व्यस्त थे और माँ के समीप कोई नहीं था। इसमें बहुत समय बीत गया और माँ सारदा को चादर के भीतर पसीना छूटने लगा। गोलाप-माँ ने भक्त को माँ के चरणों में पुष्प अर्पित करते देखा और कुछ काम से चली गईं। बहुत समय पश्चात् जब गोलाप-माँ लौटीं, तो उन्होंने देखा कि भक्त तब भी वहाँ माँ के सामने बैठा हुआ है। माँ की विकट परिस्थिति को अनुभव कर वे शीघ्रता से माँ की सहायता के लिए वहाँ पहुँच गयीं। उस व्यक्ति का हाथ पकड़कर उसे ऊपर उठाते हुए अपने सामान्य तेज आवाज से उन्होंने कहा – ''क्या तुम यह सोचते हो कि वह लकड़ी की कोई मूर्ति है, जिसे तुम प्राणायाम या किसी अन्य अनुष्ठान से जाग्रत कर दोगे? तुम्हें कोई समझ नहीं है? क्या तुम्हें दिखाई नहीं देता कि माँ को कितनी गर्मी लग रही है और उन्हें कष्ट हो रहा है?''

माँ के शिष्यों और भक्तों की संख्या में वृद्धि के साथ ही माँ सारदा का कष्ट बढ़ता गया। लेकिन करुणामयी माँ सहनशीलता और क्षमा की मूर्ति थीं। उन्होंने अपने बच्चों की पीड़ा और कष्ट को अपने ऊपर ले लिया। कभी-कभी वह दुख व्यक्त करते हुए कहतीं – ''ठाकुर मैं अब और भार नहीं उठा सकती।'' लेकिन उन्होंने बहुत अधिक सहन किया। सौजेन्द्र मजुमदार के भाई सत्येन्द्रनाथ ने प्रत्यक्षदर्शी विवरण प्रस्तुत किया है –

किसी-किसी दोपहर में उद्‌बोधन भवन में माँ के दर्शनार्थियों को पंक्तिबद्ध करने का काम मुझे सौंपा जाता था। कुछ सनकी भक्त माँ को बहुत कष्ट देते थे। मैंने देखा, एक वृद्ध माँ के सामने जोरों से रो रहा है और अपना सिर पटक रहा है। दूसरा व्यक्ति उन्हें अपनी जीवन-कथा सुनाने लगा, उसे इसकी चिन्ता नहीं थी कि अन्य लोग कतार में खड़े हुए हैं। पुन: किसी ने अपना सिर माँ के चरणों में रख

दिया और वहीं पड़ा है। दूसरे दिन एक आदमी माँ के सामने लेट गया और प्रार्थना करने लगा कि माँ अपने चरण उसकी छाती में रखकर तत्काल उसकी चेतना को जाग्रत कर दें। उनको समझाना या उनके दुराग्रह को मानना अत्यन्त कठिन था। कभी-कभी मैं उनके अज्ञानतापूर्ण भावुकता को देखकर क्रोधित हो जाता और कभी उनके अपरिपक्व व्यवहार को देखकर अपनी हँसी नहीं रोक पाता था। एक दिन जब मैंने माँ के समक्ष उन लोगों का उपहास किया, उन्होंने मुझसे कहा – ''बेटा जब तुम बड़े हो जाओगे, तब तुम समझोगे, इन संतप्त लोगों के हृदय में कितनी पीड़ा है। तुम एक माँ नहीं हो।''

एक बार मैं जयरामबाटी में था और रास्ते में एक व्यक्ति से मिला। वह विष्णुपुर (२८ मील) से पूरी रात पैदल चलकर आया था। उसका शरीर मजबूत और बलिष्ठ था। उसके बाल घने और उसकी आँखें लाल जवा-कुसुम (गुड़हल) फूल के समान थीं। उसने मुझसे पूछा, ''क्या तुम मुझे बता सकते हो, माँ का घर कहाँ है?'' मैंने उससे कहा – ''मेरे साथ आइए। मैं भी वहीं रहता हूँ।'' जब मैंने उससे नाम और पता पूछा, वह हँसा और उत्तर दिया – ''मेरा कोई नाम नहीं, कोई कुल नहीं है और न कोई घर है। मैं माँ की पूजा की बलि हूँ और मैं आहुति की प्रतीक्षा में हूँ।'' मैं उस विचित्र भक्त के स्वभाव को देखकर हक्का-बक्का रह गया। वह पागल नहीं था। उसने माँ को प्रणाम किया, माँ ने उसे तालाब में स्नान करने के लिए कहा। वह शीघ्रता से डुबकी लगाकर आ गया, माँ ने उसे मुरमुरा और जलेबी खाने को दिया। माँ के पास बैठकर वह बच्चों के समान खाने लगा। माँ ने अपने हाथों को उसके शरीर पर फेरा और फिर बोलीं, ''बेटा पानी पीओ। माँ उसे अपने पूजाघर में ले गईं, मैं चला आया। मैं नहीं जानता, वहाँ क्या हुआ, लेकिन मैं समझता हूँ, माँ ने उसे दीक्षा दी। भोजन करने के बाद भक्त गहरी नींद में सो गया। बाद में माँ ने मुझे बताया – ''यह उसका अन्तिम जन्म है। ऐसा व्यक्ति इस प्रकार उन्मत्त हो जाता है।''

वह व्यक्ति और मैं दोपहर में पैदल घूमने गए, हम लोग के बीच घनिष्ठ मित्रता हो गई। उसका स्वभाव सौम्य था, वाणी मधुर थी। उसने कहा – ''आज मेरा नया जन्म हुआ है – मेरा अन्तिम जन्म भी। मैं अपनी मातृभूमि के लिए कोई महान कार्य करते हुए अपने जीवन की बलि नहीं दे सका, इसलिए मैंने अपने आपको जगन्माता के चरणों में अर्पित कर दिया। मुझे कोई कष्ट या सन्ताप नहीं है।'' बाद में मेरी उससे कभी-कभी उद्‌बोधन भवन में भेंट हुई। एक बार वह युवक और मैं रामकृष्ण संघ के साधुओं के साथ मुंगेर (बिहार) प्लेग राहत कार्य के लिए गए। मैंने बिरले ही ऐसे कर्त्तव्यनिष्ठ, विनम्र और कर्मठ कार्यकर्त्ता को देखा है। दूसरों की सेवा करते हुए वे उस भीषण बीमारी से संक्रमित हो गए। अपनी मृत्यु के कुछ ही क्षण पूर्व, उसने अपनी आँखें खोलीं और बोले – ''माँ आ गई हैं। मुझे जाने दो।'' कलकत्ता वापस लौटने के बाद, मैंने माँ को यह बात बताई, माँ कुछ समय स्तब्ध रहीं और उनकी आँखें नीची थीं।''

माँ मनुष्य के भीतर को देख सकती थीं और उनकी क्षमता को जान लेती थीं। ज्ञान (बाद में स्वामी ज्ञानानन्द) ईस्ट बंगाल का घुमक्कड़ और साहसी युवक था, जो कलकत्ता आया था। वह अरूपानन्द को जानता था और उनके माध्यम से माँ को प्रणाम करने उद्‌बोधन भवन गया था। कुछ महीने बाद वह जयरामबाटी गया और वह माँ से वहाँ मिला। माँ ने उस युवक को वहाँ रहने के लिए कहा। ज्ञान ने अपने संस्मरण में लिखा है –

एक दिन अपराह्न में माँ ने मुझसे पूछा, ''ज्ञान क्या तुम आमोदर नदी में नहाने के लिए जाते हो?'' मैंने कहा, ''हाँ, मैं जाता हूँ।'' फिर माँ बोली – ''नहाने के लिए कल प्रात: तुम जल्दी चले जाना। वहाँ नदी के तट पर पीले फूलोंवाला एक पेड़ है। उस पेड़ से टोकरी भरकर फूल ठाकुर-पूजा के लिए ले आना।'' 'ठीक है माँ' कहते हुए टोकरी लेकर मैं अपने कमरे में चला गया। दूसरे दिन प्रात: जब मैं फूल लेकर माँ के पास पहुँचा, वे ठाकुर के चित्र के सामने बैठकर पूजा कर रही थीं। उन्होंने मुझे उनके पास के आसन में बैठने का संकेत दिया। मैं वहाँ शान्ति से बैठ गया। अपनी पूजा समाप्त करने के बाद, माँ ने मुझे अपने थोड़ा और पास आने को कहा। फिर उन्होंने मुझे मंत्र और कुछ आध्यात्मिक निर्देश दिया। ठाकुर के चित्र की ओर इंगित करते हुए उन्होंने मुझे दंडवत होकर ठाकुर को प्रणाम करने के लिए कहा।

जैसा कि मैं स्वभाव से हठी था, मैंने तर्क किया – ''मैं उन्हें प्रणाम क्यों करूँ? मैं उन्हें जानता नहीं।'' माँ ने मेरी ओर देखा और दृढ़तापूर्वक आदेश दिया – ''मैं बोल रही हूँ, उनको प्रणाम करो। क्या तुम उन्हें नहीं जानते? वे सब में हैं। वे जगद्‌गुरु हैं – सभी जीवों के गुरु हैं।'' मैंने पुन: प्रतिवाद किया ''वे मेरे गुरु कैसे हो सकते हैं? आपने मुझे

मंत्र दिया है, इसलिए आप मेरे गुरु हैं।'' मुझे टोकते हुए माँ बोलीं, ''मैं किसी की गुरु नहीं हूँ, मैं सबकी माँ हूँ। एकमात्र गुरु वे ही हैं।'' मैंने पुन: कहा – ''आप मेरी माता कैसे हो सकती हैं? मेरी माँ घर में हैं और अभी भी जीवित हैं।'' उन्होंने कहा – ''मैं वही माँ हूँ।'' मेरी ओर ध्यान से देखो, मैं तुम्हारी वही माँ हूँ या नहीं।'' स्तब्ध, मैंने देखा, मेरी जन्मदायिनी माँ वहाँ मेरे सामने बैठी हैं। मेरा शरीर भय से काँप उठा। ''माँ-माँ'' कहते हुए मैं उनके चरणों पर गिर पड़ा। मेरे सभी तर्क समाप्त हो गए और मैंने सदा के लिए उनके चरणों में आत्मसमर्पण कर दिया। उन्होंने मुझे यह ज्ञान दिया – वे केवल मंत्र-गुरु ही नहीं थीं, वे मेरी अपनी माता थीं, सभी जीवों की माता, इस ब्रह्माण्ड की जननी थीं।

सब की माँ

जयरामबाटी में एक दिन नलिनी ने देखा – माँ भक्तों के जूठे पत्तल उठा रही हैं। नलिनी बोल उठी – ''हे भगवान! फूआ आप सभी जाति के लोगों का जूठन साफ कर रही हैं।'' माँ ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया – ''सभी जाति के लोग मेरे बच्चे हैं।'' उनके प्रेम ने जाति से परे ऊँच-नीच, गरीब-धनी, सबको एक कर दिया।

स्वामी विश्वेश्वरानन्द स्मरण करते हैं – ''एक दिन जयरामबाटी में भोजन के बाद मैं अपनी जूठी थाली उठाने वाला था, लेकिन माँ ने मेरा हाथ पकड़कर रोक दिया। फिर थाली लेकर वे स्वयं गईं। मैंने कहा : 'माँ आपने ऐसा क्यों किया? मैं इसको साफ कर सकता हूँ।' माँ ने उत्तर दिया – 'मैं तुम्हारे लिए कितना अल्प कर रही हूँ। जैसा कि तुम जानते हो, एक बच्चा माँ की गोद में गंदगी करता है, अपना क्रोध प्रदर्शित करता है, लेकिन माँ चुपचाप शान्त भाव से अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करती है। तुम देवताओं के लिए भी अत्यधिक प्रिय हो।' ''

एक बार उद्‌बोधन भवन में माँ से मिलने के लिए एक स्त्री अपनी छोटी बेटी के साथ आई। बच्ची माँ के पास उनके चादर में सोई हुई थी और उसने चादर को गंदा कर दिया। बच्ची की माँ लज्जित हो गई और चादर को धोने के लिए बढ़ी, लेकिन माँ ने चादर उससे ले लिया और स्वयं उसे धो दिया। जब उस शिशु-कन्या की माँ ने आपत्ति की, तब माँ ने कहा – ''मैं क्यों उसे नहीं साफ करूँगी? क्या वह मेरी अपनी नहीं है?''

धीरे-धीरे भक्तों की संख्या बढ़ने लगी, कभी-कभी असुविधाजनक समय पर भी वे लोग उद्‌बोधन भवन आने लगे। वे अपनी समस्याएँ माँ के समक्ष रखते और माँ उनका मार्गदर्शन करती थीं। उन्हें विश्राम करने के लिए बहुत कम समय मिलता था। उनकी असुविधा को देखते हुए एक दिन गोलाप-माँ ने सप्रेम उलाहना देते हुए उन्हें कहा – ''माँ आपके साथ क्या हो गया है? आप बहुत अधिक उदार हो गई हैं। जो भी आपके पास आता है और आपको 'माँ' कहता है, आप उसे अपने शरण में ले लेती हैं।''

माँ ने कहा – ''मैं क्या करूँ गोलाप? माँ होने के नाते मुझसे कोई सहायता माँगे, तो मैं अपने को रोक नहीं सकती।''

यद्यपि माँ एक देवी थीं, लेकिन वे बिलकुल एक संसारी माँ के समान व्यवहार करती थीं। वे ठाकुर के तथा अपने संन्यासी शिष्यों का संन्यास नाम नहीं ले पाती थीं। बल्कि वे उनके संन्यासपूर्व के नाम से बुलातीं, जैसे – नरेन, राखाल, जोगीन, शरत, बाबूराम, कृष्णलाल, रासबिहारी, आदि-आदि। जब उनसे इसका कारण पूछा गया, तब माँ ने कहा – ''देखो, मैं माँ हूँ, उन्हें, उनके संन्यास नाम से बुलाने पर मुझे दुख होता है। यह सत्य है पुत्र राष्ट्रपति, न्यायाधीश या साधु हो सकता है, लेकिन माँ के लिए वह पुत्र ही है।''

एक दिन स्वामी विश्वेश्वरानन्द ने पूछा : ''माँ आप हमलोगों को किस दृष्टि से देखती हैं?''

माँ सारदा ने उत्तर दिया : ''मैं तुम सभी को नारायण के रूप में देखती हूँ। स्वामी बोले : ''माँ, हम आपके पुत्र हैं।

माँ ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया – ''मैं तुम्हें नारायण रूप में, साथ ही अपने पुत्र के समान देखती हूँ।'' यह संकेत करता है कि उनका जीवन उनके दैवी और मानवीय पक्ष का संगम था।

वर्ष १९१८ में सुहासिनी अपनी सखी सरला (बाद में भारतीप्राणा) के साथ उद्‌बोधन-भवन में माँ का दर्शन करने गई। वह बागबाजार में रहती थी, इसलिये अपनी बेटी शान्ति के साथ प्राय: माँ के पास आती थी। एक दिन सुहासिनी शान्ति को साथ लिए बिना उद्‌बोधन गई, क्योंकि छोटी बच्ची चंचल थी और अन्य लोगों को परेशान करती थी। जब माँ ने यह बात सुनी, तो उन्होंने कहा, अच्छा, मैंने

कभी अनुभव नहीं किया कि वह गड़बड़ करती है। वैसे तो नटखट करना छोटे बच्चों का स्वभाव होता है। राधू को देखो ! वह मुझे कितना परेशान करती है। उसकी माँ पागल है। मुझे उसकी सभी समस्याओं तथा इच्छाओं का सामना करना पड़ता है। उसकी माँगें अन्तहीन हैं और कुछ तो निरर्थक भी हैं। एक बंगाली कहावत है – 'मैं गीले शक्कर को सुखाऊँगा और सूखे शक्कर को गीला करूँगा और फिर उसे खाऊँगा।' राधू इस प्रकार की माँग रखती है। यदि उसकी इच्छा की पूर्ति न की जाये, तो वह चिल्लाती और रोती है। मैं तुम्हें बता नहीं सकती कि राधू से मैंने कितने थप्पड़ और घूँसे खाए हैं। मेरे प्रति राधू के दुर्व्यवहार ने मेरी माता को दुखी कर दिया। कभी-कभी वे असंतोष व्यक्त करते हुए कहतीं – ''तुम्हारा स्वयं का बच्चा नहीं था। मुझे समझ में नहीं आता कि दूसरों का कष्ट अपने ऊपर लेकर तुम कैसे मुस्कराती रहती हो। फिर मैं अपनी माता को कुछ मीठे शब्दों से सान्त्वना देती थी।''

दूसरी स्त्री भक्त ने मुस्कराते हुए कहा : ''माँ, आज यदि नानी जीवित होतीं, तो वह रुष्ट हो गई होतीं। आज कितने नर-नारी आपको 'माँ-माँ' कहकर परेशान कर रहे हैं। यद्यपि हमने आपके पेट से जन्म नहीं लिया है, इसका यह अर्थ नहीं है कि हम आपके बच्चे नहीं हैं।'

माँ तत्काल खड़ी हो गईं और दृढ़तापूर्वक बोलीं – ''तुमने क्या कहा, तुमने मेरे कोख से जन्म नहीं लिया? तब फिर तुमने किसके कोख से जन्म लिया है? क्या तुम मेरी संतान नहीं हो? फिर तुम किसकी संतान हो? क्या मेरे अतिरिक्त और कोई माँ है? मैं सभी नारियों और माताओं में विद्यमान हूँ। यह निश्चित और निर्विवाद रूप से जान लो, किसी भी स्थान से जो भी यहाँ आता है, वह सभी मेरी संतान हैं। मुझे 'माँ' पुकारते हुए जो भी यहाँ आते हैं, वे सभी मेरी संतान हैं। अपने जीवन के अन्तिम समय में मेरी माता ने यह समझ लिया था। जब उन्होंने नरेन, राखाल, शरत, सारदा, जोगीन, निरंजन, गिरीश और निवेदिता को देखा। उन लोगों के द्वारा मुझे 'माँ' पुकारने पर वह सुनकर अति प्रसन्न होती थीं। मेरी माता कहती थीं – ''अहा, अन्ततः माँ दुर्गा ने मेरी इच्छा पूरी कर दी। मेरी सारदा की अब कई संतान हैं ! जब वे मुझे ''नानी' कहकर पुकारते हैं, मेरा हृदय संतोष से भर जाता है। वे लोग मुझसे जब खाने के लिए कुछ माँगते हैं, मुझसे बातें करते है या अपनी कहानी सुनाते हैं, तब मेरा हृदय आनन्द से भर जाता है, जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकती। मेरी माता उन्हें मुरमुरा और लड्डू देती थीं, जिसे वे बड़े चाव से खाते थे। उन्हें देखकर वे हँसती थीं। उस समय मैं उनके चेहरे पर अपूर्व आनन्द और संतोष देखती थी। उन दिनों महिला-भक्तों की संख्या अधिक नहीं थी और बहुत कम लोग जयरामबाटी आ पाती थीं। जब महिला-भक्तों का जयरामबाटी आना प्रारम्भ हुआ, तब तक मेरी माता का देहान्त हो चुका था। लेकिन मुझे एक माँ के रूप में देखकर वे बहुत आनन्द से गईं।''

वेदान्त के अनुसार ब्रह्म 'सत्-चित्-आनन्द' है। ब्रह्म न पुरुष है, न स्त्री। लेकिन ब्रह्म की वह शक्ति, जब रूप धारण करती है, तब वह पुरुष या प्रकृति हो सकती है, नर या नारी। इसके अतिरिक्त सगुण ब्रह्म माता और पिता दोनों हो सकते हैं। एक भक्त ने ठाकुर के आध्यात्मिक कार्यों में माँ सारदा की सक्रिय भूमिका के बारे में यह कहते हुए प्रश्न किया, अन्य अवतारों की आध्यात्मिक सहचरी ने ऐसा कार्य नहीं किया था। भक्त ने पूछा – वे दूसरों से भिन्न क्यों थीं। माँ ने उत्तर दिया : ''बेटा तुम जानते हो ठाकुर ने सभी जीवों में जगन्माता के दर्शन किए थे। इस समय उन्होंने मुझे जगत के मातृभाव को प्रदर्शित करने के लिए यहाँ छोड़ा है।'' ○○○ **(समाप्त)**

पृष्ठ २६६ का शेष भाग

करना चाहिए। उचित बात न केवल सुनने में अच्छी लगती है, बल्कि तथ्यपरक भी होती है। मनु ने कहा है, सत्य बोलो। जो सुखद लगे उसे बोलो। कष्टदायक सत्य को मत बोलो। ऐसा कुछ भी मत बोलो जो प्रिय हो, लेकिन मिथ्या हो। यही शाश्वत धर्म है। भगवान ने अर्जुन को सिखाया, वह वाणी जो पीड़ा उत्पन्न नहीं करती सुखद और लाभकारी होती है। वाणी की ऐसी तपस्या व्यक्ति को शुद्ध करती है।

आसक्ति का अभाव – हमारी अधिकांश समस्याएँ हमारी इच्छाओं के कारण होती हैं। आसक्त व्यक्ति आसक्ति का अनुभव करता है। इसलिए, जो प्रसन्न रहना चाहता है, उसे आसक्ति छोड़ देनी चाहिए। कुशलतापूर्वक और आसक्ति के बिना अपने सभी कर्तव्यों को पूरा करना पूरी तरह सम्भव है। वास्तव में, आसक्ति कुशल कार्यप्रणाली को बाधित करती है।

इस तरह युवा अपने अन्दर उपरोक्त सद्गुणों को विकसित करके अपने विक्षुब्ध मन को शान्त करके आनन्दित जीवनयापन कर सकते है। ○○○

अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस विशेष

आधुनिक जीवन में योग की भूमिका

डॉ. श्याम सिंह

हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, नेरुआ, शिमला, हिमाचल प्रदेश

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में योग विश्व में मानव-जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है। योग का प्रमुख केन्द्र भारत होने के कारण हम सभी भारतीयों के लिए गर्व की बात है। आज जब समूचे विश्व ने योग की सामर्थ्य और उपयोगिता को पहचाना है और उसे अपनाया है, तो एक भारतीय होने के नाते हमारा कर्तव्य है कि हम भी योग के सच्चे अर्थ को समझें, उसे अपने जीवन में अपनायें और उसका जन-मानस में प्रचार करें, जिससे दूसरे लोग भी जानकर उसका अपने जीवन में लाभ उठा सकें। यदि हम हमारी आधुनिक जीवन शैली की चर्चा करें, तो आज का मानव भय, चिन्ता, दुख एवं विभिन्न मानसिक विकारों से घिरा हुआ है। भय और चिन्ता आज के रोग के आक्रमण के कारण हैं, जो मनुष्य को रोगग्रस्त बना देते हैं। क्योंकि भय तथा चिन्ता करने से उनकी सहन शक्ति तथा रोग-निरोधक शक्ति दुर्बल हो जाती है। इन सबकी अचूक दवा योग को माना गया है। योग का अर्थ है – चित्त एवं मन की वृत्तियों का निरोध करना।

योग का आरम्भ सबसे पहले कब हुआ, यह कहना कठिन है। योग का उल्लेख भगवद्गीता में भी पाया जाता है। पहले योग की शिक्षा केवल मौखिक रूप से दी जाती थी। योग को लिखित रूप में संग्रहित करने का काम सबसे पहले महर्षि पतंजलि ने किया, जो आज 'पतंजलि-योगसूत्र' नामक पुस्तक के नाम से प्रसिद्ध है। महर्षि पंतजलि ने योग का आठ अंगों में वर्गीकरण किया और उसे नाम दिया अष्टांग योग – (१) यम – अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य अपरिग्रह। (२) नियम – शौच-संतोष-तप-स्वाध्याय-ईश्वर प्रणिधान। (३) आसन (४) प्राणायाम (५) प्रत्याहार (६) धारणा (७) ध्यान (८) समाधि। अध्यात्म के अतिरिक्त योग का शारीरिक और मानसिक लाभ भी होता है। योग एक सम्पूर्ण व्यायाम है। जिस प्रकार हमलोग व्यायामशाला में जाकर कसरत कर अपने सम्पूर्ण शरीर का व्यायाम करते हैं, ठीक उसी प्रकार हम योग, आसन और प्राणायाम कर सावधानी से प्रकृति के समीप रहकर अपने सारे शरीर को सबल, शक्तिशाली बना सकते हैं। आज अधिकतर लोगों के लिये योग केवल एक व्यायाम का प्रकार मात्र है। योग को केवल शारीरिक स्वास्थ्य का माध्यम समझा जा रहा है। वास्तव में योग शब्द का अर्थ है दो या दो से अधिक चीजों का मिलन, आत्मा से परमात्मा के मिलन को ही योग कहते हैं। योग शरीर, मन तथा भावनाओं को संतुलित करने की कला है। इस प्रक्रिया में आसन, प्राणायाम, मुद्रा बन्ध, ध्यान और षट्कर्म जैसे पक्षों का प्रतिदिन अभ्यास करना आवश्यक है। अब यह भी प्रमाणित हो चुका है कि योग शारीरिक स्वास्थ्य के साथ-साथ मानसिक स्वास्थ्य के लिये भी आवश्यक है। वर्तमान दौड़-धूप की आपाधापी में चिन्ता, तनाव और मनोरोग को दूर करने का सबसे अच्छा और आसान उपाय योग है। इससे केवल शरीर ही स्वस्थ नहीं होता है, बल्कि तनाव सम्बन्धी हार्मोन में भी कमी आती है। योग और प्राणायाम करने से हमारी श्वसन प्रणाली मजबूत होती है। कपालभाति, नाड़ीशोधन, शीतली, शीतकारी जैसे भिन्न प्राणायाम की क्रियाएँ करने से शरीर में प्राणवायु की मात्रा बढ़ती है, जिससे स्नायु और सभी अवयव स्वस्थ रहते हैं। संतुलित स्वस्थ श्वसन क्रिया करने से अस्थमा, मधुमेह, उच्च रक्तचाप और कर्क रोग जैसे रोग में मदद मिलती है।

आज के भाग-दौड़ के युग में सभी व्यक्ति किसी न किसी मानसिक तनाव या चिन्ता से पीड़ित हैं। चिन्ता, भय, शोक, क्रोध, ईर्ष्या इत्यादि मानसिक विकार हमारे शरीर पर भी विपरीत परिणाम करते हैं। नियमित योग करने से हम अपने चंचल मन पर भी नियन्त्रण कर सकते हैं तथा मानसिक विकारों से मुक्ति पा सकते हैं। संतुलित स्वस्थ तन के लिये स्वस्थ मन आवश्यक है और इसके लिए एकाग्रता और संयम बढ़ानेवाला अष्टांग योग आवश्यक है। योगासन करने से शरीर सबल तो बनता है, साथ ही शरीर का लचीलापन भी बढ़ जाता है। लचीलापन बढ़ने से आपकी दैनन्दिन गतिविधि सरल हो जाती है और बुढ़ापा भी दूर रहती है। आज विश्व में मोटापा की समस्या महामारी की तरह फैल

रही है। मोटापा की समस्या आगे जाकर मधुमेह, हृदयरोग और उच्च रक्तचाप जैसे गंभीर रोगों को जन्म देती है। मोटापा से पीड़ित व्यक्ति हजारों रुपये खर्च कर भी अपने बढ़े हुए वजन को कम नहीं कर पा रहे हैं। कपालभाति प्राणायाम और पश्चिमोत्तानासन, सूर्य नमस्कार, त्रिकोणासन, सर्वांगासन जैसे विविध योगासन कर हम सरलता से अपने बढ़े हुए वजन को कम कर सकते हैं। शरीर की रोगनिरोधक शक्ति हमें हमारे आसपास के रोगकारक विषाणुओं से लड़कर बीमार होने से बचाती है।

अध्ययन से यह प्रमाणित हो चुका है कि नियमित योग का अभ्यास करने से हमारी रोग-निरोधक शक्ति बढ़ सकती है और बार-बार बीमार होने के कष्ट और उपचार कराने के पैसों के खर्चे से छुटकारा मिलता है, जिससे हमारा सम्पूर्ण शरीर स्वस्थ एवं सुन्दर दिखने लगता है तथा आध्यात्मिक, शारीरिक और मानसिक संतुलिन बना रहता है। नियमित योग का अभ्यास करने से हमें कई रोगों से मुक्ति मिल सकती है। स्वस्थ व्यक्ति अगर संतुलित आहार लेता है और नियमित योग करता है, तो मधुमेह, उच्च रक्तचाप, मनोविकार, हृदय रोग आदि से हमेशा दूर रह सकता है। रोग से पीड़ित व्यक्ति अगर नियमित योग करता है, तो उसके रोग की तीव्रता भी कम होती है और उस रोग से होनेवाले दुष्परिणाम से भी छुटकारा मिल सकता है। योग करने से पहले रोगी को अपने चिकित्सक से परामर्श लेना चाहिए और योगविशेषज्ञ से योग करने की सही विधि सीख लेनी चाहिए।

अपने व्यस्त जीवन में कुछ समय योग के लिये निकालकर नियमित योगाभ्यास करें। योग भविष्य का धर्म और विज्ञान है। भविष्य में योग का महत्त्व बढ़ेगा। यौगिक क्रियाओं से वह सब कुछ बदला जा सकता है, जो हमें प्रकृति ने दिया है और सब कुछ पाया जा सकता है, जो हमें प्रकृति ने नहीं दिया है। योगाभ्यास से आज के मानव की आध्यात्मिक, शारीरिक एवं मानसिक विकास की उन्नति सम्भव है। योग से ही अच्छे संस्कार, विचार एवं मानव जीवन के व्यवहार को बदला जा सकता है। आज का मानव अपने जीवन की श्रेष्ठता के चरम पर अब योग के माध्यम से आगे बढ़ सकता है। इसलिए योग के मूलमंत्र एवं महत्त्व को समझना होगा और उसे अपने जीवन में अपनाना होगा।

○○○

पृष्ठ २४८ का शेष भाग

अंशुमान और राजा दिलीप दोनों माँ गंगा को पृथ्वी पर लाने में सफल नहीं हो सके। किन्तु दिलीप के पुत्र भगीरथ ने सन्तों की महिमा का वर्णन कर माँ गंगा को आश्वस्त किया और उन्हें पृथ्वी पर आकर उनके पूर्वजों को तारने की कातर प्रार्थना की। माँ गंगा ने कहा कि जब मैं पृथ्वी पर जाऊँगी, तो पापी लोग मुझमें स्नान कर अपना पाप धोयेगे, तो मैं उस पाप को कहाँ धोऊँगी? हे राजन ! इस पर थोड़ा विचार कर लो। तब राजा भगीरथ ने माँ गंगा से कहा –

साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनः।
हरन्त्यघं तेऽङ्गसंगात् तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः।।[११]

– 'हे माता ! समस्त विश्व को पवित्र करनेवाले विषय-त्यागी, शान्तस्वरूप, ब्रह्मनिष्ठ साधु-महात्मा आकर तुम्हारे प्रवाह में स्नान करेंगे, तब उनके अंग के संग से तुम्हारे सारे पाप धुल जायेंगे। क्योंकि उनके हृदय में समस्त पापों का नाश करनेवाले श्रीहरि निवास करते हैं।'

माता शबरी को भी भगवान श्रीराम ने नवधा भक्ति में प्रथम सत्संग करने को ही कहा था – **प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।**

सत्संग साक्षात् भगवान का शरीर है। जैसे शरीर में शरीरी रहता है, वैसे सत्संग-शरीर में परमात्मा रूपी शरीरी का निवास है। सत्संग से उसका साक्षात् सान्निध्य मिलता है। इस सत्संग की महत्ता का बोध कर ही तो, गोस्वामी तुलसीदास जी ने भगवान से याचना की थी –

देहि सत्संग निज अंग श्रीरंग
भवभंग कारन सरन शोकहारी। **विनयपत्रिका**

ऐसी महिमा है साधु-संग की। इसलिये भक्त को साधु-संग करना चाहिये। **(अगले अंक में समाप्त)**

सन्दर्भ सूत्र – १. नारदभक्तिसूत्र ५८ **२.** वही, ६० **३.** २ अक्टूबर, १८८४, श्रीरामकृष्णवचनामृत, (अखण्ड) पृ. ६७८ **४.** वही, वही **५.** वही, पृ. ७ **६.** ना.भ.सू. ३८ **७.** ना.भ.सू. ३९ **८.** श्रीरामचरितमानस ५/४/० **९.** श्रीमद्भागवत ११/१२/२-४ **१०.** वही, ११/१४/१६ **११.** वही, ९/९/६

श्रीराम और श्रीरामकृष्ण

स्वामी निखिलात्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी महाराज, प्रयागराज, नारायणपुर, जयपुर के सचिव थे। उन्होंने यह व्याख्यान श्रीरामकृष्ण आश्रम, अमरकंटक में दिया था, जिसे विवेक-ज्योति पत्रिका के पाठकों हेतु प्रकाशित किया जा रहा है।)

हम देखते हैं न, भागवत में कथा आती है – माता यशोदा ने ऐसा कसकर भगवान श्रीकृष्ण को बाँधा था कि कृष्ण कोशिश करके भी नहीं छुड़ा पाते। एकबार भगवान कृष्ण ने माँ यशोदा की जितनी पुरानी हंडिया थीं, सारी हंडियों को फोड़ डाला। किसी में मक्खन रखा था, किसी में दूध रखा था, किसी में दही था। यशोदाजी देखती हैं – अरे कन्हैंया तो आजकल बड़ा नटखट हो गया है। आज तो इसे बाँधकर ही रखूँगी। यशोदाजी ऐसा बाँधती हैं कि वे प्रयास करके भी नहीं छुड़ा पाते हैं। एक कवि ने बड़ा सुन्दर लिखा है –

जिन बाँधे सुर-असुर नाग नर प्रबल करम की डोरी।
सोइ अबिछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि बाँध्यो सकत न छोरी।।

विनय पत्रिका ९८/२

कवि कहते हैं, जिस भगवान ने सुर, असुर, नाग, नर, किन्नर को कर्म की डोरी के द्वारा जीवों को बाँध रखा है, उसी भगवान को उस यशोदा ने ऐसा कसकर के बाँधा है कि कृष्ण कोशिश करके भी छुड़ा नहीं पा रहे हैं। बँध जाते हैं, भगवान भक्त के प्रेमपाश में। पहले तो बड़ी लीला करते हैं। हम सब पढ़ते हैं न भागवत में। जहाँ भगवान कृष्ण ने यशोदाजी की पुरानी हंडियों को तोड़ डाला, यशोदा जी कहती हैं – आज तो इसे बाँधकर रखूँगी। वे लम्बी रस्सी लेकर के आती हैं और जैसे ही कृष्ण को बाँधने की कोशिश करती हैं, देखती हैं रस्सी दो अंगुल छोटी हो गयी ! यशोदाजी को बड़ा आश्चर्य होता है – अरे ! इतनी लम्बी रस्सी थी, इतनी छोटी कैसे हो गयी? गोपियाँ पास में खड़ी थीं, वे हँसने लगीं। यशोदाजी को क्रोध आ गया। वे कहने लगीं – तुम लोग हँस रही हो, आज मैं इसे बाँध कर ही छोड़ूँगी। तुमलोग अपने घर से रस्सियाँ ले आओ। गोपियाँ भी अपने घर से रस्सियाँ लाती हैं। यशोदाजी सारी रस्सियों को जोड़कर के फिर कृष्णजी को बाँधने जाती हैं। देखती हैं, रस्सी दो अंगुल छोटी की छोटी। सबको बड़ा आश्चर्य, इतनी लम्बी रस्सी, पर कैसे छोटी पड़ जा रही है? भक्तों ने भगवान कृष्ण से कहा – अरे प्रभु ! जब बच्चे बने हो, तो बच्चे जैसा कार्य करना चाहिए। माँ के सामने आप अपना ऐश्वर्य दिखा रहे हो? भगवान ने कहा – मैं क्या बड़ा हो रहा हूँ, जो मुझको दोष देते हो? भक्तों ने कहा – कहीं आप बड़े तो नहीं हो रहे हो ! भगवान ने कहा – फिर मुझे दोष क्यों देते हो? भक्तों ने कहा – ये रस्सी कैसे छोटी हो जा रही है? भगवान ने कहा – इसमें मेरा कोई दोष नहीं है, मेरा कोई प्रभाव नहीं है। अरे, ये तो माँ के हाथ का प्रभाव है। माँ के हाथ में आकर के रस्सी छोटी हो जा रही है, तो मैं क्या करूँ? भक्तों ने कहा – महाराज ! माँ कोई जादू जानती हैं क्या, जो उनके हाथ में रस्सी छोटी हो जा रही है। भगवान ने कहा – अरे जिसके हाथ में आकर इतना विराट ब्रह्म शिशु बन सकता है, तो उसके हाथ में आकर रस्सी दो अंगुल छोटी हो जाये, इसमें आश्चर्य की क्या बात है? गोस्वामीजी लिखते हैं –

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुण बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद।।

(१/१९८)

जो व्यापक है, ब्रह्म है, निरंजन है, ऐसा विराट ब्रह्म कौशल्या की गोद में एक शिशु की भाँति पड़ा हुआ है।

यही अवतार की लीला है ! भक्त जैसा चाहता है, भगवान वैसी लीला करते हैं और यहाँ तक कि भक्त के प्रेमपाश में भगवान बँध जाते हैं। भक्त ने भगवान से कहा – प्रभु ! हम भी मुक्त होना चाहते हैं, आप ज्ञानियों को मुक्त करते हैं, हम भी मुक्त होना चाहते हैं। भगवान ने कहा, देखो भाई ! ये ज्ञानी कैसे मुक्त होते हैं जानते हो ! जीव माया की डोर से बँधा हुआ है। ज्ञानी अपने ज्ञान के खड्ग से इस माया की डोर को काट देता है। **असंग शस्त्रेण दृढ़ेन छित्वा** – असंग की तलवार से इस माया की डोर को काटकर मुक्त हो जाता है। तुम मुक्त होना चाहते हो, तो आओ तुम्हारी माया की डोरी को हम काट देते हैं। भक्तों ने कहा – प्रभु ! इस माया की डोरी को आप काटेंगे, तो ये

डोरी बेकार हो जायेगी। भगवान ने कहा – अरे, तुम्हें तो मुक्त होना है, फिर इस डोरी से क्या लेना-देना है? भक्तों ने कहा – प्रभु ! हमें केवल मुक्त नहीं होना है, साथ में यह डोरी भी चाहिए। भगवान ने कहा – इस डोरी से क्या करोगे ? भक्तों ने कहा – इस डोरी से आपको बाँधेंगे। जिस माया की डोरी से आप अभी तक हमको बाँधते रहे हैं, उसी डोरी से हम आपको बाँधकर देखेंगे, आप कैसे दिखाई देते हैं। सचमुच भक्त की माया के प्रेमपाश में भगवान बँध जाते हैं। भक्त के प्रेम की डोर में भगवान बँध जाते हैं, अवतार की लीला है, जैसा भक्त चाहता है, भगवान लीला करते हैं।

श्रीरामकृष्ण अवतार में हम क्या देखते हैं – भगवान श्रीरामकृष्ण कैंसर की बीमारी से पीड़ित हैं। वे भक्तों को देखकर के आँसू बहाते हैं। वे कहते हैं – देखो ! ऐसी बीमारी से पीड़ित हूँ कि भक्तों के यहाँ मैं जा भी नहीं पा रहा हूँ। पहले मैं गाड़ी से जाता था, अब मैं कहीं भी नहीं जा पाता हूँ। मैं तुमलोगों के पास नहीं जा पाता, तुमलोग से बातें नहीं कर पाता हूँ। वे यहाँ तक कहते हैं कि अगर तुमलोग कहो, तो इस प्राण को त्याग दूँ, देह को त्याग दूँ, पर इस देह को इसीलिए बना करके रखा हूँ, क्योंकि मेरे जाने से तुम सबको बहुत कष्ट होगा, बहुत दुख होगा। श्रीरामकृष्ण रोते हुए कहते हैं – 'निताई आमार द्वारे द्वारे हरिनाम विलिये छिलो' – अरे नित्यानन्द ने द्वार-द्वार जाकर के भगवान का नाम सुनाया था, पर मैं बीमारी से पीड़ित होने के कारण कहीं भी जा नहीं पा रहा हूँ। भक्तों के लिए ऐसे कष्ट का अनुभव श्रीरामकृष्ण देव करते हैं।

अवतार युग-युग में आते हैं। त्रेतायुग में आये श्रीराम, इस युग में आते हैं भगवान श्रीरामकृष्ण और कैसे भक्तों के लिए लीला कर जाते हैं ! हमारे मन में प्रश्न जागता है – श्रीराम आये थे, उन्होंने राक्षसों का नाश किया, रावण का नाश किया, कुम्भकर्ण का नाश किया, पर श्रीरामकृष्ण ने क्या किया? उन्होंने तो किसी राक्षस का नाश नहीं किया। गिरीशचन्द्र कहते हैं – नहीं, हमारे प्रभु श्रीरामकृष्ण भी राक्षसों का नाश करते हैं। श्रीराम के हाथ में धनुष-बाण थे, हमारे श्रीरामकृष्ण के भी हाथ में अस्त्र-शस्त्र हैं।

भगवान राम त्रेतायुग में आते हैं और भगवान श्रीरामकृष्ण इस युग में आते हैं। हम इन दोनों के जीवन में समानता के सूत्र देख पाते हैं। केवल ये दो अवतार ही नहीं, जितने भी अवतार आते हैं, चाहे जिस देश में आयें, जिस काल में आयें, यही दर्शाते हैं कि कैसे हम अपने दिव्य जीवन को जानें, समझे। भगवान के साथ हमारा अटूट सम्बन्ध है, हम जो ईश्वर के अंश हैं, उसे हम जानें और अपने जीवन को धन्य बनायें। इसीलिए विभिन्न युगों में अवतार आते हैं। कैसे श्रीराम और श्रीरामकृष्ण; दोनों भक्तों की इच्छा को पूर्ण करने के लिए आते हैं। भक्त जैसा चाहता है, भगवान वैसी ही लीला करते हैं, भक्त के प्रेमपाश में भगवान बँध जाते हैं।

हमारे मन में प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि भगवान राम ने तो रावण, कुम्भकर्ण जैसे राक्षसों का वध किया था, पर भगवान श्रीरामकृष्ण तो इस युग में आते हैं। उन्होंने तो किसी राक्षस का वध नहीं किया। अरे राक्षस की बात तो क्या किसी दुष्ट मनुष्य का भी तो वध नहीं किया। यह भी प्रश्न जागता है कि श्रीराम के हाथ में धनुष-बाण था और श्रीरामकृष्ण के हाथ में तो कोई अस्त्र-शस्त्र ही नहीं था। यहाँ हम अवतार में भिन्नता देख पाते हैं, पर गोस्वामी तुलसीदास की मान्यता क्या है? गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं – हमारे भगवान राम केवल एक रावण, कुंभकर्ण के नाश के लिए नहीं आये थे। अगर रावण, कुंभकर्ण का नाश करना होता, तो श्रीराम के पहले भी कई ऐसे लोग थे, जो चाहते तो रावण, कुंभकर्ण जैसे राक्षसों का नाश कर सकते थे। गोस्वामीजी कई नाम गिनाते हैं। कहते हैं –एक तो बालि ही था, वह इतना शक्तिशाली था, उसने रावण को युद्ध में परास्त किया था, उसे बेहोश कर दिया था और बेहोश रावण को बालि बगल में दबाकर के छह महीने तक संसार में घूमता है। संसार को वह दिखाना चाहता था कि देखो तुम्हारा विश्व-प्रसिद्ध रावण मेरी बगल में दबा हुआ है। गोस्वामीजी कहते हैं – बगल में दबे रावण को बालि जोर से दबा देता, तो रावण वहीं मर जाता। भगवान राम को कष्ट करके आने की आवश्यकता नहीं थी। पर बालि मारता नहीं है रावण को, जैसे रावण अहंकारी, वैसे बालि भी अहंकारी। बालि संसार को दिखाना चाहता है कि देखो विश्वप्रसिद्ध रावण मेरी बगल में दबा हुआ है।

दूसरा उदाहरण देते हैं गोस्वामीजी सहस्त्रार्जुन का, जिसकी हजार भुजायें थीं। सहस्त्रार्जुन ने भी रावण को युद्ध में परास्त किया था। उसकी कथा ऐसी आती है – रावण एक दिन शिवलिंग लेकर नर्मदा नदी के किनारे पूजा कर रहा था, शिवलिंग की आराधना कर रहा था। ऐसे समय में देखता है कि नदी में अचानक बाढ़ आ गयी और उसकी

सारी पूजा-सामग्री बह जाती है। रावण को बड़ा आश्चर्य हुआ! अरे अभी तो वर्षा ऋतु का समय नहीं, नदी में अचानक बाढ़ कैसे आ गयी? कारण जानने के लिए रावण प्रवाह की दिशा के विरुद्ध आगे बढ़ता है और कुछ दूर जाकर देखता है कि सहस्त्रार्जुन अपनी रानियों के साथ नर्मदा के जल में जल-क्रीडा कर रहा है। कभी सहस्त्रार्जुन अपने हजार हाथों से नर्मदा के जल को रोक लेता है तो नर्मदा के जल का सारा प्रवाह स्थिर हो जाता है और जैसे ही अपने हाथ उठाता है, वही प्रवाह बाढ़ के समान तेजी से प्रवाहित होता है। रावण को लगा, इसी के कारण मेरी पूजा-सामग्री बह गयी। युद्ध के लिए वह सहस्त्रार्जुन को ललकारता है। सहस्त्रार्जुन और रावण का युद्ध होता है। उस युद्ध में सहस्त्रार्जुन रावण को परास्त करता है। वह भी उसे मारता नहीं, छोड़ देता है। इसलिये गोस्वामीजी कहते हैं, सहस्त्रार्जुन के लिए रावण का नाश करना कोई बहुत बड़ी बात नहीं थी। इच्छा होने से ही सहस्त्रार्जुन रावण का नाश कर सकता था, किन्तु उसने नहीं किया। गोस्वामीजी तीसरा नाम गिनाते हैं, परशुराम जी का। वैसे परशुराम और रावण का सीधा युद्ध नहीं होता, पर परशुरामजी ने रावण को हरानेवाले सहस्त्रार्जुन को हराया था। उसके हजार हाथों को अपने फरसे से काट डाला था, उसका नाश कर दिया था, गोस्वामीजी कहते हैं कि उस परशुरामजी के लिए रावण का नाश करना कोई कठिन काम नहीं था। तो इतने लोगों के रहते हुए भगवान राम के आने की कोई आवश्यकता नहीं थी। इसीलिए गोस्वामीजी कहते हैं – भगवान राम केवल रावण, कुंभकर्ण का नाश करने नहीं आये थे, बल्कि उनके अवतार का उससे भी एक महत्तर प्रयोजन था। क्या प्रयोजन था?

एक घटना के माध्यम से गोस्वामीजी लिखते हैं – घटना उस समय की, जब श्रीराम ने लंका में रावण का नाश कर दिया, तब देवता आते हैं और विभिन्न प्रकार से भगवान राम की स्तुति करते हैं। वे रावण की निन्दा करते हैं। कहते हैं – प्रभु ! आपने इस दुष्ट का नाश करके हम पर बड़ी कृपा की है। यह सारे संसार का द्रोही था। कहते हैं –

बिश्व द्रोह रत यह खल कामी।
निज अघ गये कुमारग गामी।। ६/१०९/४

– प्रभु ! यह सारे संसार का द्रोही था, इसने अपने पाप का फल पाया और इसीलिए आपने इसका नाश करके हम पर बड़ी कृपा की। कहते हैं –

बिश्व द्रोह रत यह दुष्ट
सो फल पायो पापिष्ठ।

सारे संसार का द्रोही था प्रभु ! अपने किये का इसने फल पाया, आपने इसका नाश करके हम पर बड़ी कृपा की। भगवान राम की स्तुति कर रहे हैं देवता लोग। इतने में एक देवता ने कहा – भाई ! हम इतने देवता यहाँ उपस्थित हैं, पर महादेव शंकर दिखाई नहीं दे रहे हैं। शंकरजी क्यों नहीं आये? दूसरे देवता ने कहा – अरे भाई ! शंकरजी तो रावण के गुरु थे न ! हो सकता है चेले की मृत्यु में शोक मना रहे हों, शायद इसीलिए नहीं आये, पर गोस्वामीजी कहते हैं – नहीं, भगवान शंकर आते हैं। कब आते हैं भगवान शंकर? गोस्वामीजी लिखते हैं –

सुमन बरषि सब सुर चले चढ़ि चढ़ि रुचिर बिमान।
देखि सुअवसर प्रभु पहिं आयउ संभु सुजान।।
६/११४/क

जब देवता लोग कई प्रकार से भगवान राम की स्तुति कर-करके, अपने सुन्दर-सुन्दर विमानों में चढ़कर चले गये, तब 'आये शंभु सुजान'। तब सुजान शंकरजी आते हैं। गोस्वामीजी का तात्पर्य था कि जब तक ये अजान देवता थे, तब तक सुजान शंकर नहीं आते। जब तक अज्ञानी देवता थे, तब तक ज्ञानी शंकर नहीं आते। गोस्वामीजी देवताओं को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते। जब ये देवता लोग भगवान राम की स्तुति करने के लिए आये, तो गोस्वामीजी लिखते हैं –

आये देव सदा स्वारथी।
बचन कहहिं जनु परमारथी।। ६/१०९/२

– बड़े स्वार्थी देवता आये। ये बात बड़े परमार्थ की करते हैं, पर हैं बड़े स्वार्थी। अब आश्चर्य होता है भाई ! ये देव योनि तो उत्तम योनि मानी जाती है। संसार में जो व्यक्ति अत्यन्त पुण्य कार्य करता है, ऐसा व्यक्ति स्वर्ग जाता है। उसमें भी जो अत्यन्त पुण्यवान होते हैं, वे जाकर के देवता बनते हैं। ये जो इन्द्र हैं, मित्र हैं, वरुण हैं, अग्नि हैं, ये तो उनकी उपाधियाँ हैं, संसार में जो भी अत्यन्त पुण्य कर्म करनेवाले व्यक्ति होते हैं, वे स्वर्ग में जाकर के देवता बनते हैं और देवता बनकर के क्या भगवान की स्तुति करते हैं? कहते हैं – अरे, ये देवता तो स्वर्ग के सुखों में ही मत्त हो जाते हैं। स्वर्ग के भोगों में ही डूबे रहते हैं। इनको भगवान की याद तो तब आती है, जब असुर लोग आकर के स्वर्ग में आक्रमण करते हैं। तब उनके भय से भागकर के ये भगवान

विष्णु के पास, भगवान शंकर के पास जायेंगे। इसीलिए गोस्वामीजी कहते हैं – बड़े स्वार्थी हैं ये, अपने स्वार्थ के लिए ये राम के पास भी जा सकते हैं, रावण के पास भी जा सकते हैं। इनकी तुलना आजकल के नेताओं से कर सकते हैं। जिनकी जेब में तरह-तरह के झंडे रहते हैं। जब जो पार्टी सत्ता में आयी, झंडा निकाल लिया, कांग्रेस पार्टी सत्ता में आयी तो तिरंगा झंडा निकाल लिया, बीजेपी सत्ता में आयी तो भगवा झंडा निकाल लिया। सचमुच हम देखते हैं, जब भगवान राम चित्रकूट में थे, उस समय भी ये देवता लोग पहुँचते हैं। गोस्वामीजी लिखते हैं –

अमर नाग किंनर दिशि पाला।
चित्रकूट आये तेहि काला।

अमर, नाग, किन्नर, दिशि पाल, ये देवताओं की विभिन्न श्रेणियाँ हैं। सब चित्रकूट पहुँचते हैं, जहाँ श्रीराम थे। भगवान राम सबको प्रणाम करते हैं – '**राम प्रणाम सबन को कीन्हा**'। श्रीराम सबको यथोचित प्रणाम करते हैं, अभिवादन करते हैं। बाद में जब हनुमानजी लंका में रावण के दरबार में पहुँचे, तो वहाँ क्या देखते हैं? देखते हैं कि देवता लोग हाथ जोड़े रावण के पास खड़े हैं। अर्थात् ये देवता लोग राम के पास भी जायेंगे, रावण के पास भी जायेंगे, जिनसे इनका कार्य सधेगा, उसके पास ये देवता जायेंगे। इसीलिए गोस्वामीजी कहते हैं – हैं ये बड़े स्वार्थी !

एक दूसरा उदाहरण हम देख पाते हैं। जब भगवान राम दंडकारण्य में सीताजी और लक्ष्मण के साथ थे। ऐसे समय में खर-दूषण चौदह हजार राक्षसी सेना लेकर आक्रमण करता है। भगवान राम लक्ष्मण से कहते हैं – लक्ष्मण ! तुम जानकीजी को लेकर गुफा के अन्दर चले जाओ, मैं अकेले ही सारे राक्षसों से लड़ूँगा –

लै जानकी जाओ गिरि कंदर।
आवा निशिचर कटक धुरंधर।।

ये सारे राक्षस आये हैं ! मैं अकेले ही इन सारे राक्षसों से लड़ूँगा। तुम जानकीजी को लेकर गुफा के अन्दर चले जाओ। लक्ष्मणजी को पूरा विश्वास है कि श्रीराम अकेले ही लड़ सकते हैं। वे जानकीजी को लेकर गुफा के अन्दर चले गये। इधर एक ओर श्रीराम हैं, उधर चौदह हजार राक्षस हैं ! बड़ा ही घमासान युद्ध चला हुआ है। ऐसे समय में भी देवता लोग पहुँच गये। पर कहाँ हैं? अपने विमानों में चढ़े हुए आकाश में हैं। वहीं से श्रीराम के प्रति सहानुभूति दिखा रहे हैं – अरे देखो कैसा अन्यायपूर्ण युद्ध है, अनर्थकारी है, इधर श्रीराम अकेले हैं, उधर चौदह हजार राक्षस हैं, ऐसा युद्ध नहीं होना चाहिए। ये युद्ध बन्द होना चाहिए। अरे भाई ! ये राक्षस चौदह हजार हैं, आप भी तो चौदह सौ हो, नीचे उतर के लड़ो न श्रीराम की ओर से, पर नहीं, इनकी सहानुभूति केवल ऊपर से है ! आजकल के जैसे goody-goody लोग होते हैं, वैसे ही ये देवता हैं ! हम देख रहे हैं – सरेआम तीन चार गुंडे महिला को सता रहे हैं, पान की दुकान पर पंद्रह लोग खड़े हुए हैं। लेकिन उसे बचाते नहीं हैं। कहते हैं – देखो कैसा जमाना आ गया। आज महिलायें सुरक्षित नहीं हैं। अरे भाई ! गुंडे तो तीन हैं, आप लोग तो पन्द्रह हैं, जाकर के भिड़ो न उनसे। कहते हैं – भाई ! इन्हीं के बीच रहना है, कौन इनसे दुश्मनी मोल ले। ऐसे ही देवता हैं! ऊपर से ही सहानुभूति दिखा रहे हैं श्रीराम के प्रति। अब सबसे विचित्र दृश्य देखने में आता है – जहाँ लंका में श्रीराम और रावण का युद्ध चल रहा है। ऐसा भयानक युद्ध कि कोई कह नहीं सकता कि युद्ध में कौन जीतेगा। ऐसे समय में भी देवता लोग पहुँच गये और अपने विमानों में चढ़े हुए, आकाश में ही हैं और वहीं से कह रहे हैं – जय हो, जय हो, जय हो। पर किसकी जय हो, यह नहीं बोल रहे हैं। उन्हें तो डर है कि अगर राम की जय मनायें और रावण जीत गया, तो छोड़ेगा नहीं। चाहते जरूर हैं कि श्रीराम जीतें और फूल भी श्रीराम पर बरसा रहे हैं, पर कहीं रावण जीत जाता और पूछता – अच्छा किसकी जयकार मना रहे थे? ये कहते – महाराज ! हम तो आपकी ही जयकार मना रहे थे। फूल किस पर डाल रहे थे। उसके लिए भी उत्तर है इनके पास। ये कहते हैं – नहीं महाराज ! हम फूल भी आप पर डाल रहे थे। इसलिए जब तक ऐसे देवता लोग थे, भगवान शंकर नहीं आते हैं। कब आते हैं भगवान शंकर? –

सुमन बरषि सब सुर चले चढ़ि चढ़ि रुचिर बिमान। देखि सुअवसर प्रभु पहिं आयउ संभु सुजान।। जब ये देवता लोग अपने सुन्दर-सुन्दर विमान में चढ़कर चले गये, तब सुजान शंकर आये। भगवान शंकर आकर के श्रीराम की ऐसी स्तुति नहीं करते कि प्रभु ! आपने राक्षस का नाश करके हम पर बड़ी कृपा की है। भगवान शंकर जो कहते हैं, उसे सुनकर

शेष भाग पृष्ठ २८१ पर

गीतातत्त्व-चिन्तन

बारहवाँ अध्याय (१२/१०)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १२वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

योगी ही भक्ति का अधिकारी

आगे भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं –

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।१४।।

योगी सततम् सन्तुष्टः (जो योगी निरन्तर सन्तुष्ट है) यतात्मा दृढ़निश्चयः (मन और शरीर का स्वामी है, दृढ़निश्चयी है) सः मयि अर्पितमनोबुद्धिः (ऐसा मुझमें पूर्णसमर्पित भक्त) मद्भक्तः मे प्रियः (मुझको प्रिय है)।

''जो योगी निरन्तर सन्तुष्ट है, मन और शरीर का स्वामी है, दृढ़निश्चयी है, ऐसा मुझमें पूर्णसमर्पित भक्त मुझको प्रिय है।''

भगवान कहते हैं, जो भक्त होता है, वह सतत सन्तुष्ट होता है। उसका सन्तोष हमेशा बना रहता है। वह योगी भी है अर्थात् भगवान से जुड़ा हुआ है। जिसने अपने शरीर और मन पर विजय प्राप्त कर ली है, ऐसा वह **यतात्मा** है। शरीर और मन पर विजय पाने का वह यत्न-प्रयास कर रहा है। साधक दृढ़निश्चयी होता है। कोई बात करने की ठान ली, तो उसे वह पूरी करेगा ही। अपनी धुन का पक्का होता है। इस प्रकार जिसने अपने मन और बुद्धि को भगवान को अर्पित कर दिया, वही भगवान का भक्त होता है और उन्हें प्रिय होता है। इन गुणों का थोड़ा विश्लेषण कर लें। सन्तोष को हम सभी जानते हैं कि वह तृप्ति है। मन में छिपी लोभवृत्ति असन्तोष को जन्म देती है। भक्त के जीवन में लोभ रह नहीं जाता। वह सदा सन्तुष्ट ही रहता है। स्वभावतः मनुष्य शरीर से होनेवाली साधनाओं जैसे तीर्थ, व्रत, उपवास आदि पर तो ध्यान देता है, क्योंकि वे उसे सहज मालूम पड़ती हैं। पर मन से होनेवाली साधनाएँ जैसे – चोरी और लोभ न करना, सन्तोष रखना, आदि पर कम ध्यान देता है। क्योंकि ये उसे कष्टसाध्य लगती हैं। मन में यदि असन्तोष की आग सुलगती रहे, तो वह व्यक्ति भगवान का भजन नहीं कर सकता, भक्त बन ही नहीं सकता। क्योंकि असन्तोष की वृत्ति के आ जाने से मन में सदा उसी का चिन्तन चलता है, जिसके कारण असन्तोष पैदा हुआ, फिर भगवान के भजन के लिए कोई स्थान नहीं रहता। सदा सन्तुष्ट रहने का अर्थ पुरुषार्थ का त्याग करके आलसी बन जाना नहीं है। हमारे पुरुषार्थ में भी भगवान का चिन्तन है। हम उन्हीं का चिन्तन करते हुए पुरुषार्थी बने कि ठीक है प्रभु, मैं तुम्हारी शक्ति से ही शक्तिमान होता हूँ, तुम्हारी ही कृपा से मैं अपने उद्यम में अग्रसर होता हूँ।

भक्त जब तक योगी नहीं बन जाता, भगवान से जुड़ा नहीं रहता, तब तक उसके मन में सन्तोष की वृत्ति सदा बनी नहीं रह सकती। भगवान से जुड़ा न रहने पर संसार के पदार्थ निरन्तर मन में हलचल पैदा करते रहेंगे। असन्तोष की वृत्ति जागती रहेगी। भगवान के साथ जुड़े रहने पर सद्वृत्तियाँ अपने आप जीवन में उतर आती हैं।

जिसने अपने शरीर, मन और इन्द्रियों को जीत लिया है, वही भगवान से जुड़ सकता है। भगवान से हमें दूर करनेवाला सबसे पहला तो हमारा शरीर है, जो हमारे मन

को अपनी ओर खींचता है। इन्द्रियाँ भी हमारे मन को अपनी ओर खींचती हैं। इसलिए यह मन जिसे भगवान के पास जाना चाहिए; शरीर और इन्द्रियों में ही उलझकर रह जाता है। मन को पूरी तरह से इन्द्रियों से हटा लेना तो सम्भव नहीं है। कभी एक नहीं, तो दूसरी इन्द्रिय कार्यरत रहेगी ही। कभी उन सबसे एक साथ मन को हटा लेने में सफल हो भी गए, तो मन के भीतर जो चिन्तन चलता रहता है, चित्तरूपी सागर से जो एक के बाद एक वृत्ति उभरती रहती है, जो संस्कार आपके चित्त में आकर जमा हुए हैं, उनकी स्मृति को आने से रोकेंगे कैसे? बाहरी संसार तो हमारे मन को आकर्षित करता ही है, पर भीतर के संस्कारों का संसार भी मन को कम पीड़ित नहीं करता। संस्कारों से भरे इस मन पर विजय प्राप्त करने का यत्न करनेवाला ही **यतात्मा** होता है और उसका मनोबल इतना बढ़ जाता है कि उसका मानसिक सम्बन्ध हमेशा भगवान के साथ रहता है।

मन के संस्कारों पर विजय प्राप्त करने के लिए दृढ़ निश्चय की आवश्यकता होती है। अर्जुन तो पहले ही भगवान से निवेदन कर चुका है कि यह मेरा मन वायु के समान अत्यन्त चञ्चल है। जिस तरह वायु को पकड़ना कठिन है, उसी तरह मन को पकड़ना भी कठिन है। उन्मत्त हाथी की ही तरह मन पर भी विजय पाना कठिन है। उसके उत्तर में भगवान कहते हैं, 'तुम बिल्कुल ठीक कहते हो, फिर भी अभ्यास और वैराग्य के द्वारा मन को वश में लाया जा सकता है।' बस, उस साधक का निश्चय दृढ़ होना चाहिए। किसी भी सांसारिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भी दृढ़ निश्चयी होना अनिवार्य है, तब फिर यह तो साधना है, जहाँ हम अपनी इन्द्रियों के साथ संग्राम करते हैं, मन के संस्कारों के साथ लड़ते हैं, तब तो यहाँ दृढ़ निश्चयी की कहीं अधिक आवश्यकता है। **शरीरं वा पातयामि कार्यं वा साधयामि**, ऐसा दृढ़ निश्चय।

भगवान से जुड़ने के लिए भक्त को अपने मन और बुद्धि के साथ-साथ अपने समस्त संकल्प-विकल्प, सभी विचार और सब निश्चय भी भगवान को सौंप देने पड़ते हैं। भगवान ने जो कहा - **यो मद्भक्तः स मे प्रियः** ... इसका अर्थ हुआ कि हम पहले ऐसे भक्त बनें, तभी भगवान को प्रिय होंगे। तात्पर्य यह है कि ऐसी साधना हम अपने जीवन में लाएँ, जिससे भगवान देख तो सकें कि हम उनके प्रति समर्पित होने का प्रयास कर रहे हैं। माँ भी शिशु को तभी दौड़कर गोद में उठाती है, जब उसे निश्चय हो जाता है कि शिशु उसकी गोद के अलावा कुछ भी नहीं चाहता।

उद्वेग ईश्वर-चिन्तन में बाधक

फिर भगवान कहते हैं –

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः।।१५।।

यस्मात् लोकः न उद्विजते (जिससे कोई भी उद्विग्न नहीं होता) च यः लोकात् न उद्विजते (और जो स्वयं किसी के द्वारा उद्विग्न नहीं होता) च यः हर्षामर्षभयोद्वेगैः मुक्तः (तथा जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेग से रहित है) स मे प्रियः (वह भक्त मुझको प्रिय है)।

''जिससे कोई भी उद्विग्न नहीं होता और जो स्वयं किसी के द्वारा उद्विग्न नहीं होता तथा जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेग से रहित है वह भक्त मुझको प्रिय है।''

भगवान का यह प्रिय भक्त ऐसा होता है कि न तो वह किसी के द्वारा उद्विग्न होता है, न किसी को भी उद्विग्न करता है। ये उद्वेग तीन प्रकार से उत्पन्न होते हैं –

१. हर्ष के कारण

२. अमर्ष के कारण

३. भय के कारण

भक्त अपनी ओर से ऐसा कोई कारण नहीं बनाता, जिससे लोग उद्विग्न हों। अब यदि कोई स्वतः ही उसकी भक्ति देखकर जलन के मारे उद्विग्न हो जाएँ, तब यह उसका दोष नहीं कहलाएगा। अब यह जलन तो उसके मन का दोष है, जो सामनेवाले के किसी भी गुण को देखकर ईर्ष्या के कारण उद्विग्न हो जाता है। तुलसीदासजी को अपने भाव के कारण चित्रकूट से दण्डकारण्य जाने के मार्ग की एक रूपरेखा बन गई थी कि उसी पर चलकर उनके प्रभु राघवेन्द्र गए थे और गोस्वामीजी का भी हठ था कि उसी मार्ग से होकर जाएँगे। रास्ते में एक सँकरी कँटीली पगडंडी पड़ी, जिस पर एक युगल प्रणय-लीला में रत थे। अब गोस्वामीजी को जाने की जल्दी भी थी और इस प्रणयी-युगल को उद्विग्न भी नहीं करना चाहते थे। उन्होंने इसका यह हल निकाला कि झट अपनी आँखें बन्द करके सूरदास बन गए और मार्ग बताने के लिए गुहार लगाने लगे। उन स्त्री-पुरुष ने प्रेम से हाथ पकड़कर उन्हें रास्ता पार भी करा दिया और स्वयं उद्विग्न भी नहीं हुए। इस प्रकार यथार्थ भक्त किसी के भी मन में

अनावश्यक उद्वेग उत्पन्न नहीं करता। प्रत्यक्ष रूप से किसी के उद्वेग का कारण नहीं बनता। मन को उद्वेलित करने के लिए संसार में हजारों कारण उपस्थित रहते हैं और इन्हीं निरर्थक कारणों से व्यक्ति का मन अशान्त हो भी जाता है। जो भक्त है, साधक है, वह इन सबसे उद्विग्न नहीं होता। उद्वेग से भगवान के चिन्तन में बाधा पहुँचती है। हर समय ईश्वर के प्रति समर्पण का जो भाव रहना चाहिए, उसका खण्डन होता है। इससे अन्त में भक्त की ही हानि होती है।

उद्वेग के कारणों में जो अमर्ष अर्थात् असहिष्णुता है, उसे मनुष्य की बुद्धि यहाँ तक खींच ले जा सकती है कि उसके कारण किसी दूसरे का कल्याण हो जाए, तो वह भी उसे सहन नहीं होता और वह उद्विग्न हो जाता है। एक व्यक्ति का हर्ष दूसरे व्यक्ति के उद्वेग का कारण तो प्राय: बनता ही आया है। अत: अपनी ओर से भरसक प्रयत्न करें कि अपने हर्ष का ऐसा प्रदर्शन न करें, जिससे किसी के मन में उद्वेग उत्पन्न हो। भय का उद्वेग तो मनुष्य को सतत सताता ही रहता है। जैसे कन्याओं के विवाह की चिन्ता, भजन करते हुए अपने और परिवार के जीवन-यापन के लिए धन की चिन्ता आदि मन में भय उत्पन्न करके उसे उद्विग्न बनाते हैं। ईश्वर की सत्ता में अटूट विश्वास और जिसे वे जन्म देते हैं, उसका योगक्षेम भी वे ही वहन करते हैं, इसका अटूट विश्वास हो, तो उद्वेग के लिए कोई स्थान ही न रहे। भक्त सर्वतोभावेन ईश्वर को समर्पित होकर उद्वेग से मुक्त रहता है। **(क्रमशः)**

पृष्ठ २७८ का शेष भाग

सबको बड़ा आश्चर्य होता है। क्या कह रहे हैं भगवान शंकर! भगवान शंकर कहते हैं –

मामभिरक्षय रघुकुलनायक।
धृत बर चाप रुचिर कर सायक।।
मोह महा घन अटल प्रभंजन।
संसय बिपिन अनल सुर रंजन।।
अगुन सगुन गुन मंदिर सुन्दर।
भ्रम तम प्रबल प्रताप दिवाकर।।
स्याम गात राजीव बिलोचन।
दीन बंधु प्रणतारति लोचन।।
अनुज जानकी सहित निरन्तर,
बसहु राम नृप मम उर अन्तर।। ६/११४/१-८

भगवान शंकर पहले ही कहते हैं – माम् अभिरक्षय रघुकुलनायक ! हे रघुकुलनायक, हे श्रीराम ! मेरी रक्षा कीजिए ! सबको बड़ा आश्चर्य होता है, अरे अब न तो रावण रहा, न कुंभकर्ण रहा, न राक्षसों की सेना रही, ये शंकरजी किससे अपनी रक्षा चाह रहे हैं? भगवान शंकर का तात्पर्य था – हे श्रीराम ! आपने एक रावण, कुंभकर्ण का नाश किया और देवताओं ने आकर के आपकी स्तुति की। प्रभु ! रावण, कुंभकर्ण जो हैं, व्यक्ति के रूप में भले ही इनका नाश हुआ हो, पर इनका नाश हुआ नहीं है। ये रावण-कुंभकर्ण आज भी हमारे जीवन में विद्यमान हैं। मोह के रूप में रावण और अहंकार के रूप में कुंभकर्ण, ये जितने राक्षस हैं दुर्गुणों के रूप में, आज भी हमारे जीवन में हैं। आपका अवतार केवल एक रावण, कुंभकर्ण के नाश के लिए नहीं हुआ। हमारे जीवन में जितने दुर्गुणरूपी रावण, कुंभकर्ण हैं, इनके नाश के लिए आपका अवतार हुआ है। यह है भगवान शंकर की दृष्टि ! वही दृष्टि है गोस्वामी तुलसीदास जी की। उनका तात्पर्य है भगवान राम केवल एक रावण, कुंभकर्ण के नाश के लिए नहीं आते। हमारे जीवन में ये जो दुर्गुणरूपी रावण हैं, उनके नाश के लिए श्रीराम आते हैं। आज ये दुर्गुण हमारे अन्दर विद्यमान हैं। आज भी श्रीराम अवतरित हो सकते हैं, यह गोस्वामीजी की मान्यता है। गोस्वामीजी बार-बार चित्रकूट जाया करते। लोगों ने उनसे पूछा – गोस्वामीजी ! आप चित्रकूट इसीलिए जाते हैं न कि वहाँ श्रीराम थे? गोस्वामीजी ने कहा – भगवान भी कभी थे, होते हैं क्या? अरे भगवान हैं, वे सार्वकालिक हैं, सब समय रहेंगे। इसीलिए कहते हैं –

चित्रकूट मँह बसत प्रभु, नित सिय लखन समेत।

अरे भाई ! चित्रकूट में भगवान राम जानकीजी और लक्ष्मणजी के साथ सब समय विद्यमान हैं। ऐसा नहीं कि वे केवल त्रेतायुग में थे और आज नहीं हैं। इसीलिए गोस्वामीजी की मान्यता है कि हमारे जीवन में भगवान आज भी अवतरित हो सकते हैं। श्रीराम आज भी हमारे जीवन में अवतरित हो सकते हैं। हमारे जीवन में आज भी ये दुर्गुणरूपी राक्षस विद्यमान हैं, इसलिए गोस्वामीजी कहते हैं – केवल एक रावण, कुंभकर्ण के वध के लिए भगवान राम का अवतार नहीं हुआ था। **(क्रमशः)**

साधुओं के पावन प्रसंग (६५)

स्वामी सत्प्रकाशानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

'निर्जन-गुप्तभाव से' ये शब्द मास्टर महाशय ने अनेक बार कहा। तत्पश्चात् उन्होंने बाईबल से एक ही प्रकार का उल्लेख किया, ''तुम जब प्रार्थना करोगे, तब कमरे का दरवाजा बन्द करके गुप्तभाव से स्वर्गीय पिटर से प्रार्थना करोगे। ईश्वर इस गुप्त प्रार्थना को देखकर तुमको प्रकाश से पुरस्कृत करेंगे।'' (मैथ्यू ६/६) मैं चुपचाप रहा और कुछ भी बोल नहीं सका।

स्वामी सत्प्रकाशानन्द

तदनन्तर मास्टर महाशय ने मुझसे कहा, ''तुम पहली बार कोलकाता आये हो। तुम अवश्य ही श्रीमाँ, राजा महाराज और बाबूराम महाराज का दर्शन करना और बेलूड़ मठ और दक्षिणेश्वर का भी दर्शन करना।'' मैंने भी पहले से ही ऐसी योजना बना कर रखी थी।

मास्टर महाशय के आदेशानुसार १९११ ई. में मैंने श्रीमाँ का दर्शन किया। श्रीमाँ के सिर पर घूँघट था। मैंने केवल चरणस्पर्श करके प्रणाम किया था।

१९१६ ई. के ग्रीष्मकाल में मैं कुछ दिन बेलूड़ मठ में रहा था। राजा महाराज अधिकांश समय बलराम मन्दिर में रहते थे। मैं बीच-बीच में जाकर उनका दर्शन करता था। तदनन्तर उनके मठ में आने पर मैंने उनसे दीक्षा के लिए कहा। उन्होंने मुझे अनेक प्रारम्भिक उपदेश दिये और कहा कि दीक्षा बाद में होगी। एक दिन महाराज ने कहा, ''देखो, यहाँ पर जितना हो सके आना, इससे तुमको कोई हानि नहीं होगी।''

वे जब प्रारम्भिक उपदेश दे रहे थे, तब मैंने साधु होने की इच्छा प्रकट की। मेरे घर की अवस्था सुनकर महाराज ने कहा, ''वर्तमान में अपनी माँ की सेवा करना तुम्हारा कर्तव्य है। अभी तुम सत्य और ब्रह्मचर्य का पालन करो।''

१९१६ ई. के ग्रीष्मकाल में ही मैमनसिंह का एक युवक मठ में आया था। वह बाबूराम महाराज को बहुत पसन्द करता था तथा उनके साथ घूमता था। राजा महाराज ने इसे लक्ष्य किया था। विनोद ने एक दिन राजा महाराज को प्रणाम करके कहा, ''मेरी छुट्टी समाप्त हो गयी है। मुझे घर वापस जाना होगा।'' राजा महाराज ने कहा, 'तुमने बाबूराम महाराज को प्रणाम किया है?'' ''नहीं, अभी करने जाऊँगा।'' ''देखो, बाबूराम महाराज को प्रणाम करने का एक मन्त्र है। क्या तुम वह प्रणाम-मन्त्र जानते हो?'' 'नहीं, मैं नहीं जानता।'' ''तुम यह प्रणाम मन्त्र सीख लो – 'घर जाने के लिए मन नहीं चाहता मेरा। इच्छा होती है कि इस चरणतल में पड़ा रहूँ सदा।' '' तदुपरान्त महाराज ने दिखला दिया कि कैसे प्रणाम करना होगा और मन्त्र बोलना होगा।

कुछ समय पश्चात् बाबूराम महाराज बरामदे में टेबल के पास बेंच पर बैठे। विनोद बाबूराम महाराज को प्रणाम करने के लिए गया। महाराज ने मुझसे कहा ''तुम जाकर देखो कि वह क्या करता है।'' मैंने जाकर देखा कि बाबूराम महाराज को भूमिष्ठ प्रणाम करके विनोद फुस-फुसाकर कुछ बोल रहा है। बाबूराम महाराज ने कहा, ''क्या कहना चाहते हो, कहो न।'' वह और कुछ नहीं बोल पाया। तब मैंने हँस दिया। बाबूराम महाराज ने मेरी ओर देखकर कहा, ''तुम जानते हो कि यह क्या बोल रहा है?'' मैंने कहा, ''हाँ जानता हूँ। महाराज ने इसे प्रणाम-मन्त्र सिखा दिया है।'' तब मैंने प्रणाम-मन्त्र कहा। उसे सुनकर बाबूराम महाराज हँसते-हँसते हाल-बेहाल हो गये। उन्होंने कहा, ''महाराज हँसी-मजाक करने में बहुत प्रवीण हैं। ''

उसी समय पाँच युवक-भक्त बाबूराम महाराज की अनुमति से जयरामवाटी में श्रीमाँ के पास दीक्षा के लिए जा रहे थे।

उनको देखकर मुझे भी श्रीमाँ से दीक्षा लेने की इच्छा हुई। बाबूराम महाराज ने मुझे भी अनुमति दी। हम सभी महाराज को प्रणाम करके और अनुमति लेकर रवाना हुये। बीच रास्ते में मुझे बहुत रक्त-आमाशय हुआ। मेरे साथ के एक मित्र ने मुझे जयरामवाटी जाने के लिए मना किया, क्योंकि इससे श्रीमाँ को बहुत परेशानी होगी। मित्र की बात मानकर मैं कोलकाता में एक अन्य मित्र के घर गया। कुछ दिनों के भीतर में ही स्वस्थ हो गया।

तदनन्तर बेलूड़ मठ में जाकर बाबूराम महाराज का दर्शन किया। इसी बीच वे मेरे विषय में सब जान चुके थे। मुझे देखकर उन्होंने कहा, ''दीक्षा का समय नहीं होने से दीक्षा नहीं होती।'' तदुपरान्त मैं महाराज का दर्शन करने गया। मुझे भय था कि महाराज मुझे डाँटेंगे। मुझे देखते ही महाराज ने कहा, ''श्रेयांसि बहु विघ्नानि।'' यह सुनकर मेरा भय जाता रहा और मन में शान्ति हुई।

उन दिनों भी मेरे मन में संशय था कि श्रीमाँ सबसे बड़ी हैं, उनके पास से ही दीक्षा लेना ठीक है। महाराज के पास से दीक्षा लेने में संकोच हो रहा था। महापुरुष महाराज गंगा किनारे टहल रहे थे। मैंने उसी समय उनसे पूछा, ''कोई-कोई श्रीमाँ से दीक्षा लेते हैं और कोई-कोई महाराज से दीक्षा लेते हैं। इन दोनों में कोई भेद है क्या?'' महापुरुष महाराज ने कहा, ''मैं तो कोई भेद नहीं देखता। एक ही गंगा का जल दो नल के भीतर से आ रहा है। एक ही ठाकुर की कृपा श्रीमाँ और महाराज के पास से आ रही है। देखो, दीक्षा लेते हैं ऐसे क्यों कहते हो, दीक्षा प्राप्त करते हैं, कहो।'' यह बात सुनकर मेरे भीतर बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। मैं दीक्षा लेने वाला कौन हूँ, दीक्षा कहाँ प्राप्त होता है, वह देखना होगा। मैंने उसी समय महाराज के पास जाकर दीक्षा की बात कही। महाराज ने कहा, ''प्रतीक्षा करो। मुझे पंजिका देखनी होगी। मैंने तुमसे जो कहा है, उसका पालन करते रहो।''

१९१७ ई. में राजा महाराज दक्षिण भारत से पुरी होकर कोलकाता आये। वे अपने साथ तुरीयानन्द जी महाराज को भी वापस ले आये। हरि महाराज का पुरी में अस्त्रोपचार हुआ था। वे उस समय बहुत अस्वस्थ थे। उद्बोधन के ऊपर तल में शरत महाराज के कमरे में उनके रहने की व्यवस्था हुई और राजा महाराज नीचे कार्यालय में रहते थे। मैं कृष्णलाल महाराज के साथ ढाका से कोलकाता आया और उद्बोधन में महाराज का दर्शन करने गया। उनको प्रणाम करते समय कृष्णलाल महाराज ने कहा, ''महाराज, इसका कुछ प्रश्न है।'' वास्तव में मेरा विशेष कुछ प्रश्न नहीं था। महाराज ने कहा, ''संन्यासी का दर्शन किया, प्रणाम किया, स्पर्श किया, क्या और कोई प्रश्न रह सकता है?''

इसके पश्चात् एक दिन महापुरुष महाराज बेलूड़ मठ से कोलकाता गये थे। वहाँ से आने के बाद उन्होंने मुझसे कहा, ''महाराज ने तुमको उनके पास जाने के लिए कहा है।'' उस दिन या उसके अगले दिन महाराज के दर्शन के लिए गया। उस समय महाराज ने बलराम मन्दिर में मुझे दीक्षा दी थी। स्वामी शंकरानन्द जी के निर्देशानुसार मैंने कुछ फल लाकर महाराज को दिया और बाद में एक वस्त्र भी दिया था।

दीक्षा के समय मैंने महाराज से कहा, ''इष्ट के साथ मेरा क्या सम्बन्ध है?'' उन्होंने कहा, ''साधन-भजन के साथ-साथ वह समयानुसार तुम्हारे भीतर प्रकाशित होगा। ... वे ही तुम्हारे सब कुछ हैं।'' तदुपरान्त मैंने मन्त्र का अर्थ पूछा। उन्होंने कहा, ''मन्त्र और इष्ट का पृथक् अर्थ नहीं है। दोनों का एक ही अर्थ प्रकट होता है। वे ही तुम्हारे सर्वस्व हैं।'' जो साधन-प्रणाली उन्होंने मुझे दी थी, उसका दृढ़ता और धैर्य के साथ अभ्यास करने का निर्देश दिया। उन्होंने मुझे दो बार पुरश्चरण करने के लिए कहा था।

और एक दिन मैं उद्बोधन में महाराज का दर्शन करने गया। उस दिन महाराज ने खुदूमणि को एक जप-माला लाने के लिए कहा। उन्होंने वही माला स्वयं जप करके मुझे दी। वह जप-माला मैं अभी भी उपयोग करता हूँ।

ठाकुर के संन्यासी-शिष्यों के बीच में पारस्परिक सम्बन्ध कितना गम्भीर था, आन्तरिक और मधुर था, यह देखने और सीखने का विषय था। उसको शब्द के द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। राजा महाराज एक बार पुरी में भगवान जगन्नाथ का दर्शन करके आये थे। स्वामीजी ने परिहास करते हुए कहा ''ओ राखाल, पुरी में जगन्नाथ के करताल जैसे नेत्र देखकर तुम्हारी आँखों से जो आँसू आये थे, भाव से आये थे या भय से?'' महाराज चुप रह गये।

स्वामी प्रेमानन्द स्वभाव से ही स्नेह-प्रवण थे। युवा संन्यासी और नवीन ब्रह्मचारियों को वे मातृभाव से उपदेश और निर्देश देते थे तथा उनलोगों की आवश्यकता की ओर सर्वदा दृष्टि रहती थी। वे उनलोगों को निर्दिष्ट समय

में जप-ध्यान के लिए मात्र प्रेरणा ही नहीं देते थे, अपितु देवसेवा हो या सब्जी काटना हो, अपने-अपने कर्तव्यपालन को अच्छी तरह से पूरा करने के लिए जोर देते थे। यहाँ तक कि झाड़ू देने से लेकर आँगन के घास को हटाने जैसे छोटे-छोटे कार्य में भी देवपूजा की तरह सम्पूर्ण मन देकर एवं निर्मल भाव से करने को कहते थे। दावात में स्याही भरते समय एक भी बूँद बाहर गिरना उनको पसन्द नहीं था।

स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज

एक समय मैं एक विशेष प्रकार की सब्जी छिल रहा था। प्रेमानन्दजी ने कहा, ''छिलका के साथ बहुत-सी सब्जी कट जा रही थी।'' नि:सन्देह वे बर्बादी नहीं चाहते थे, किन्तु किसी कार्य को गलत ढंग से करने को वे पसन्द नहीं करते थे। लोगों को दिखाने के लिए कार्य नहीं करना, लोगों की आँखों से चुरा करके साधारण कर्तव्य को सही ढंग से करने में ही चरित्र की वास्तविक परीक्षा होती है। इस भाव को वे हमारे मन में दृढ़ता से भरने का प्रयास करते थे।

गृहस्थभक्तों के प्रति वे समान रूप से स्नेहशील थे। वे केवल उनके आध्यात्मिक उन्नति के लिए ही प्रयत्नशील रहते थे, सो नहीं, उनकी सांसारिक सुख-सुविधा की ओर भी ध्यान देते थे। किसी के बीमार होने पर उसके शारीरिक स्वास्थ्य का प्राय: ही समाचार लेते थे। कभी-कभी वे फल, सब्जी और मठ के बगीचे की फसल उनलोगों को देते थे। भक्तों को खिलाने से वे बहुत खुश होते थे। जो भक्त दोपहर में बेलूड़ मठ में आते थे, उनके मध्याह्न भोजन की व्यवस्था रहती थी। जो लोग असमय आते थे, वे सभी प्राय: अपरिचित होते थे, उनलोगों के भोजन के लिए नौकरों के रसोईघर साफ करने के बाद भी कभी-कभी फिर से भोजन बनाना पड़ता था। इन सब कार्यों में स्वामी प्रेमानन्दजी स्वयं रसोईघर जाकर सहायता करते थे।

एक दिन प्रात: गम्भीर ध्यान के उपरान्त आनन्द पुलकित होकर उद्दीप्त आँख-मुँह से उन्होंने मेरी ओर आकर मेरे कन्धे पर हाथ रखकर मुझे स्नेह किया। मेरे पूरे शरीर में सिहरन हो गयी। अन्य एक समय उन्होंने स्वयं अपने हाथ से मुझे पकड़कर आशीर्वाद दिया था।

पूजा या ध्यान के समय उनका मुखमण्डल दीप्त हो उठता था, वक्षस्थल भी लाल हो उठता था। इसका मैंने प्रत्यक्ष अनुभव किया है, केवल बेलूड़ मठ के मन्दिर में ही नहीं, बल्कि उनके साथ मेरा जितने मन्दिरों में दर्शन करने का सुयोग हुआ था, सब मन्दिरों में।

एक दिन ढाका में स्वामी प्रेमानन्द एक भक्त के घर में मध्याह्न भोजन के लिए आमन्त्रित हुए थे। स्थानीय आश्रम के सब साधु, अनेक भक्त और गृहस्वामी के कुछ मित्र इस भोज में गये थे। आहार के पूर्व हम सभी लोग अतिथिकक्ष में बैठे हुए थे। प्रेमानन्द अपने स्वाभाविक उत्साह के साथ उस दल के साथ बातें कर रहे थे। श्रोताओं के बीच जादूघर के व्यवस्थापक नास्तिक थे। बातों-बातों में महाराज ने कहा, ''अध्यात्म-सम्पद् जैसे भक्ति, ज्ञान, विचारबुद्धि, अनासक्ति इत्यादि के लिए ईश्वर के पास प्रार्थना करो।'' वे बीच में ही बोल उठे, ''क्यों हमलोग ईश्वर के पास प्रार्थना करेंगे? हमलोगों की क्या आवश्यकता है, वे नहीं जानते क्या?'' उत्तर में प्रेमानन्द ने कहा, ''हाँ, आप यदि उस प्रकार अनुभव करते हैं, आपको यदि दृढ़ विश्वास हो, तो ईश्वर आपकी सभी आवश्यकताओं के बारे में जानते हैं और उसकी पूर्ति करते हैं, तब आपके लिए प्रार्थना की आवश्यकता नहीं है। किन्तु अनेक लोग अपनी सांसारिक वासना और पार्थिव वस्तुओं की प्राप्ति के लिए ईश्वर के पास प्रार्थना करते हैं। ईश्वर के पास क्षणस्थायी वस्तु के बदले चिरस्थायी वस्तु के लिए प्रार्थना करना बुद्धिमान व्यक्ति का कार्य नहीं हैं क्या? राजाओं के राजा के पास जाकर मूर्ख के सिवा तुच्छ वस्तु कौन चाहेगा? यदि तुम उनके पास प्रार्थना करना चाहते हो, तो श्रेष्ठ वस्तु के लिए प्रार्थना करो।''

स्वामी प्रेमानन्द ने कई बार साधारण जनसभा में भाषण दिया है। उनमें से मैंने कई सुना था। वे सभी क्षेत्रों में अकल्पनीय भाषण देते थे। उनके अन्त:स्तल से मन को प्रभावित करने वाली बात निकलकर श्रोताओं के मन को प्रभावित करती थी। मानवरूपी ईश्वर की सेवा करने के लिए ही वे जोर देते थे। **(क्रमश:)**

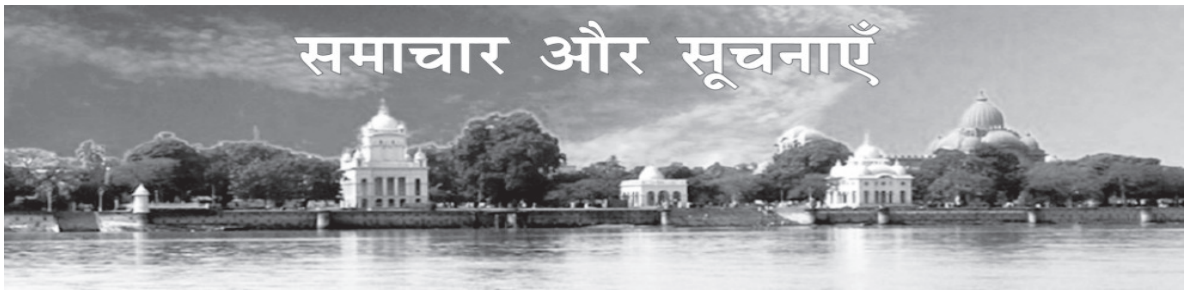

स्वामी विवेकानन्द जी की १६०वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा जनवरी, २०२४ में किए गए विभिन्न कार्यक्रमों की संक्षिप्त रिपोर्ट

विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सत्संग भवन में प्रतिदिन सन्ध्या ६ बजे विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिताएँ आयोजित की गयीं।

१३ जनवरी, २०२४ को अन्तर्महाविद्यालयीन विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। विषय था – ''**स्वामी विवेकानन्द के अनुसार त्याग का आदर्श।**''। इसमें शा.नागार्जुन विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर की छात्रा कु. श्रीप्रिया तिवारी ने प्रथम, गुरुकुल महिला महाविद्यालय, रायपुर की छात्रा कु. अदिति

अतिथियों से पुरस्कार प्राप्त करता हुआ विजेता

शुक्ला ने द्वितीय, श्रीरावतपुरा सरकार विश्वविद्यालय, धनेली, रायपुर की छात्रा कु. ऋषिका श्रीवास्तव ने तृतीय और डी.के. एस. एग्रीकल्चर एंड रिसर्च स्टेशन, भाटापार की छात्रा कु. सिद्धि तिवारी ने प्रोत्साहन और विवेकानन्द शिक्षण संस्थान, विद्यापीठ, कोटा रायपुर की छात्रा कु. संगीता साहू ने सान्त्वना पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता अध्यक्ष, रक्षा अध्ययनशाला, शा.नागार्जुन विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर के प्रो. गिरीशकान्त पाण्डेय जी ने की।

१४ जनवरी को अन्तर्महाविद्यालयीन तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता थी, जिसमें शासकीय नागार्जुन स्नातकोत्तर विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर की कु. श्रीप्रिया तिवारी ने प्रथम, डी.के.एस. एग्रीकल्चर एण्ड रिसर्च स्टेशन, भाटापारा की कु. सिद्धि तिवारी ने द्वितीय और विवेकानन्द शिक्षण संस्थान, विद्यापीठ, कोटा रायपुर की छात्रा कु. संगीता साहू ने तृतीय, कु. अदिति शुक्ला, रा.स.वि. के प्रणव त्रिपाठी और शास. नवीन महाविद्यालय, गुढ़ियारी, रायपुर के सागर मेरावी ने सान्त्वना पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता नाक-कान-गला विशेषज्ञ डॉ. विप्लव दत्ता ने की थी।

१५ जनवरी को अन्तर्महाविद्यालयीन वाद-विवाद प्रतियोगिता थी, जिसका विषय था – ''**इस सदन की राय में विश्व में व्याप्त अशान्ति का समाधान भारतीय विचारधारा से अधिक सम्भव है।**'' शासकीय नागार्जुन स्नातकोत्तर विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर की छात्रा कु. कलिका पारधी प्रथम, शा.न.महा.वि. गुढ़ियारी के सागर मेरावी ने द्वितीय, कु. सिद्धि तिवारी ने तृतीय और कु. श्रीप्रिया तिवारी और नीरज कुमार पटेल ने सान्त्वना पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता पं. रविशंकर विश्वविद्यालय के प्रोफसर डॉ. राजीव चौधरी ने की।

१६ जनवरी को '**इस सदन की राय में समाज-जीवन स्वहित की अपेक्षा परहित से अधिक सुखदायी होगा।**' इस विषय पर अन्तर्विद्यालयीन वाद-विवाद प्रतियोगिता थी। इसमें विवेकानन्द विद्यापीठ, आदर्श आवासीय उ.मा. विद्यालय, कोटा, रायपुर के नवीन भार्गव ने प्रथम, आर्यन खन्ना ने द्वितीय, श्रीरामकृष्ण विद्यालय, रायपुर की कुमारी नन्दिता वासुदेव ने तृतीय और कु. खुशबू और तर्ण कुर्रे ने सान्त्वना पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता श्री विनोद कुमार लाल जी ने की।

१७ जनवरी को अन्तर्विद्यालयीन तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता थी। इसमें कु. उन्नति शर्मा ने प्रथम, विवेकानन्द विद्यापीठ के खोमेश ठाकुर ने द्वितीय, मदर्स प्राइड स्कूल, सुन्दर नगर, रायपुर के तुषार शर्मा ने तृतीय और विवेकानन्द विद्यापीठ के सौरभ बघेल और हरिश रात्रे ने सान्त्वना पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. सुभाष चन्द्राकर जी ने की।

आज १८ जनवरी को अन्तर्विद्यालयीन विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता का आयोजन था। विषय था – '**स्वामी विवेकानन्द का आत्मविश्वास का सन्देश।**' इसमें कु. उन्नति शर्मा ने प्रथम, विवेकानन्द विद्यापीठ के ओंकार कोसले ने द्वितीय, आर्यन खन्ना

ने तृतीय और रामकृष्ण विद्यालय की कु. सुनैना देवांगन, कु. पायल कुकरेजा और विवेक कान्वेन्ट स्कूल के युवंशी पटेल ने सान्त्वना पुरस्कार प्राप्त किये। इस सत्र की अध्यक्षता पं.र.शु. विश्वविद्यालय के प्रो. एस. के जाधव जी ने की।

१९ जनवरी को 'अन्तर्माध्यमिक शाला विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता' का विषय था – **'स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में मनुष्य-निर्माणकारी शिक्षा की आवश्यकता।'** इसमें पुलिस पब्लिक स्कूल की कु. सुकृति शर्मा ने प्रथम, रामकृष्ण विद्यालय की कुमारी लवली मंधानी ने द्वितीय, कु. राधिका तिवारी और कु. नम्रता साहू ने तृतीय और विवेकानन्द विद्यापीठ, रायपुर के शेखर ध्रुव और कांगेर वेली एकेडमी रायपुर के संदीप चक्रवर्ती ने सान्त्वना पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर के कम्पयूटर अध्ययनशाला के विभागाध्यक्ष डॉ. संजय कुमार ने की।

२० जनवरी को 'अन्तर्माध्यमिक शाला वाद-विवाद प्रतियोगिता' थी। विषय था – **'इस सदन की राय में छात्र-जीवन में कोरी जानकारी की अपेक्षा अनुभव अधिक महत्त्वपूर्ण है।'** इसमें रामकृष्ण विद्यालय की कु. कैफिना बानो ने प्रथम, कांगेर वेली एकेडमी, रायपुर के अरब अग्रवाल, वीर छत्रपति शिवाजी इंग्लिश मिडियम स्कूल, रायपुर की कु. दीक्षिता चौहान ने तृतीय और अर्णव चौधरी तथा अल्फिया बेगम ने सान्त्वना पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. शम्पा चौबे ने की।

२१ जनवरी को '**अन्तर्प्राथमिक पाठशाला पाठ-आवृत्ति प्रतियोगिता**' थी। इसमें विवेकानन्द विद्यापीठ आदर्श आवासीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, कोटा, रायपुर के छात्र तनिष्क परते ने प्रथम, शुभम् कुमार बंजारे ने द्वितीय, स्वामी विवेकानन्द स्कूल के हिमाक्ष वर्मा ने तृतीय और लायन्स क्लब विद्यालय, रायपुर की कु. प्रगति यादव और कु. गुनिका यादव तथा विवेकानन्द विद्यापीठ के पुलस्त ध्रुव ने सान्त्वना पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. अभया जोगलेकर ने की।

राष्ट्रीय युवा दिवस, रायपुर में प्रतिभागी

सभी प्रतियोगिता-सत्रों का आयोजन एवं संचालन स्वामी व्रजनाथानन्द जी ने किया।

राष्ट्रीय युवा दिवस मनाया गया

१२ जनवरी, २०२४ को रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के सत्संग भवन में राष्ट्रीय युवा दिवस मनाया गया, जिसमें विभिन्न शिक्षण संस्थानों के ३७५ छात्र-छात्राओं ने सोत्साह भाग लिया। आश्रम के छात्रों ने देशभक्ति गीत प्रस्तुत किये। स्वामी प्रपत्त्यानन्द, दुर्गाकॉलेज के प्रोफेसर डॉ. सुभाष चन्द्राकर जी ने छात्र-छात्राओं को सम्बोधित किया। सभा की अध्यक्षता आश्रम के सचिव स्वामी अव्ययात्मानन्द जी ने की।

विवेकानन्द जयन्ती उद्घाटन समारोह

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में विवेकानन्द जयन्ती समारोह का उद्घाटन और पुरस्कार वितरण समारोह का आयोजन २३ जनवरी, २०२४ को सन्ध्या ७ बजे किया गया।

मोमेन्टो और प्रमाण पत्र

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि नगर निगम, रायपुर के कमिश्नर श्री अविनाश मिश्र जी थे। मुख्य वक्ता थे विवेकानन्द विद्यापीठ के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा जी। आश्रम के सचिव स्वामी अव्ययात्मानन्द जी ने सभा की अध्यक्षता की। स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने सभा को सम्बोधित किया। विजेता छात्र-छात्राओं को पुरस्कार में मोमेन्टो और प्रमाण पत्र दिया गया और अल्पाहार दिया गया। वैदिक मन्त्र-पाठ स्वामी विश्वदेवानन्द, स्वामी ब्रह्ममृतानन्द स्वामी पद्माक्षानन्द ने, स्वागत भाषण स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने, मंच संचालन स्वामी देवभावानन्द जी ने तथा धन्यवाद ज्ञापन स्वामी व्रजनाथानन्द जी ने किया। विवेकानन्द विद्यार्थी भवन के छात्रों के भजन से कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

श्रीमद्भागवत प्रवचन आयोजित हुआ

२४ जनवरी, २०२४ से ३० जनवरी तक प्रतिदिन सन्ध्या ७ से ९ बजे तक वृन्दावन से पधारे भागवत उपासक पण्डित अखिलेश शास्त्रीजी के 'वेणु गीत' पर भक्तिपूर्ण मार्मिक और सारगर्भित प्रवचन हुए।

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी में सनातनधर्मीय अन्तर्सम्प्रदाय सम्मेलन हुआ

रामकृष्ण मिशन की १२५ वीं स्थापना वार्षिकी के अवसर पर एक दिवसीय 'सनातन धर्मीय अन्तर्सम्प्रदाय सम्मेलन का आयोजन रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, लक्सा, वाराणसी के प्रांगण में २८ जनवरी, २०२४ को प्रातः ९ बजे से सनातन धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों के प्रमुख धर्माचार्यों की उपस्थिति में सम्पन्न हुआ। वैदिक मंगलाचरण के पश्चात् रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम के सचिव

स्वामी भेदातीतानन्द ने स्वागत भाषण दिया। आश्रम अध्यक्ष स्वामी विश्वात्मानन्द जी ने विषय प्रवेश करते हुए बताया कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वैश्विक चुनौतियों का सामना करने हेतु सनातन धर्म की विभिन्न परम्पराओं व सम्प्रदायों को एकीकृत होना आवश्यक है, जो आपसी समन्वय के द्वारा ही सम्भव हो सकता है। उद्घाटन सत्र में मुख्य वक्ता रामकृष्ण मठ, राजकोट, गुजरात के अध्यक्ष स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी ने भगवान श्रीरामकृष्ण परमहंस के वक्ताओं में रामानन्द सम्प्रदाय के श्रीमहंत सियाराम दास जी, निर्मल सम्प्रदाय के महन्त बलविन्दर सिंह जी, कबीर मठ के उमेश कबीर, कालिकानन्द वेदान्त आश्रम के ब्रह्मचारी सत्यव्रत, परमार्थ साधक संघ के स्वामी सोऽहम चैतन्य पुरी जी व सारदा मठ की प्रव्राजिका ब्रह्मस्वरूपप्राणा माता जी आदि थीं। कार्यक्रम की उद्घोषणा उत्कर्ष चौबे ने करते हुए 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' की सनातनी संस्कृति पर बल दिया। कार्यक्रम में ४५०

अद्वैत आश्रम, वाराणसी में सनातनधर्मीय अन्तर्सम्प्रदाय सम्मेलन

जीवन को ही समन्वय का सूत्र बताया। उर्ध्वाम्नाय सुमेरुपीठाधीश्वर स्वामी नरेन्द्रानन्द सरस्वती जी ने अद्वैत चिन्तन को ही समन्वय का मूलाधार बताते हुए कहा कि यदि दशनामी साधु समाज में अनावश्यक भ्रान्तियाँ न फैलाकर, आदिशंकराचार्य के द्वारा प्रदर्शित और विवेकानन्द जी द्वारा परिमर्जित अद्वैत वेदान्त का अनुसरण करें, तो वह समन्वय का सही प्रयास होगा। निम्बार्क सम्प्रदाय के डॉ. वृन्दावन बिहारीदास काठिया बाबा ने अस्वस्थ होने के कारण अस्पताल से ही सभा को आनलाइन सम्बोधित किया।

सिद्ध योगाश्रम के महन्त दण्डी स्वामी आत्मानन्द तीर्थ जी ने कहा कि समन्वय तो सनातन धर्म की श्रुति परम्परा से ही आरम्भ होता है और शास्त्रोक्त जीवन-निर्वाह करने पर हम उस परम तत्त्व को प्राप्त करते हैं, जहाँ सब सम्मिलित हो एकाकार हो जाता है। दक्षिणामूर्ति मठ के वेदान्ताचार्य स्वामी मधुसूदन गिरि जी ने उपनिषदों की ओजस्वी वाणियों का आश्रय लेकर कहा कि स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण संघ के प्रतीक चिह्न में ही प्रतीकात्मक रूप में चारों योगों का समन्वय कर दिया है और उसका यथार्थ स्वरूप रामकृष्ण मिशन होम ऑफ सर्विस है। उदासीन सम्प्रदाय के स्वामी आत्मानन्द वेदान्ताचार्य ने शिवमद्वैतं के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया और महामण्डलेश्वर स्वामी प्रणव चैतन्य पुरी जी ने विदेशों में रामकृष्ण मिशन द्वारा किये जा रहे धर्मप्रचार की प्रशंसा की। अद्वैत आश्रम, वाराणसी के स्वामी आलोकानन्द जी ने संस्कृत में सभा को सम्बोधित करते हुए कहा कि जिस प्रकार विभिन्न स्थानों से निकली नदियाँ, भिन्न-भिन्न पथों से होकर अन्त में समुद्र में मिल जाती हैं, ठीक उसी प्रकार मनुष्य अपनी इच्छा से भिन्न पथ चुनता है। ये पथ देखने में भले ही भिन्न हों, किन्तु ये सभी ईश्वर तक ही जाते हैं। अन्य प्रतिभागियों में काशी के साधु समाज व विश्वविद्यालयों के प्रोफेसर व शोधकर्ताओं ने सोत्साह भाग लिया। कार्यक्रम को सफल बनाने में सर्वश्री स्वामी शास्त्रविदानन्द, तितीक्षानन्द, देवाधिपानन्द और स्वयंसेवकों ने सहयोग किया।

विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर में कार्यक्रम हुए

१३ जनवरी, २०२४ को विवेकानन्द मानव प्रकर्ष संस्थान द्वारा राष्ट्रीय युवा सप्ताह के उपलक्ष्य में 'युवाशक्ति, राष्ट्रभक्ति और स्वामी विवेकानन्द' विषय पर व्याख्यान हुए, जिसमें रामकृष्ण मिशन, बिलासपुर के सचिव स्वामी सेवाव्रतानन्द, स्वामी प्रपत्त्यानन्द, डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, डॉ. सुधीर शर्मा, डॉ. सुभाष चन्द्राकर जी ने छात्र-छात्राओं को सम्बोधित किया।

१४ फरवरी, २०२४ को विद्यापीठ में बसंत पंचमी उत्सव मनाया गया, जिसमें माँ सरस्वती की पूजा हुई। स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने छात्र-छात्राओं को सम्बोधित किया।

राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित हुई

२८ फरवरी, २०२४ को विवेकानन्द विद्यापीठ के मानव प्रकर्ष संस्थान द्वारा राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। पाँच सत्रों में संचालित यह गोष्ठी प्रातः १० बजे से लेकर सन्ध्या ६.३० बजे तक चली, जिसमें रामकृष्ण मिशन, नई दिल्ली के सचिव स्वामी सर्वलोकानन्द जी, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी अव्ययात्मानन्द जी, रामकृष्ण मिशन, कानपुर के सचिव स्वामी आत्मश्रद्धानन्द जी, विवेकानन्द विश्वविद्यालय, बेलूड़ मठ, हावड़ा के कुलपति स्वामी सर्वोत्तमानन्द जी, स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी, डॉ. ओमप्रकाश वर्मा जी, श्री कनक तिवारी जी ने सभा को सम्बोधित किया।